हम [illegible] की पुस्तकमाला

क्रांतिकारी महिलाएं

आशा रानी व्होरा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आषाढ़ 1908 ([illegible]

मूल्य : 4.50

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार, कनाट सर्कस, नई दिल्ली – 110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई–400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता–700069
- एल० एल० आडिटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना–800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम–695001
- 10 बी०, स्टेशन रोड, लखनऊ– 226019
- स्टेट आर्किलाजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद–500004

गोवर्सन्स पब्लिशर्स (प्रा०) लिमिटेड, मायापुरी, नई दिल्ली 110064 में मुद्रित।

प्रकाशकीय

स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाशित पुस्तकों की इस शृंखला में प्रस्तुत पुस्तक देश की उन महान महिलाओं के अद्भुत शौर्य पर प्रकाश डालती है जिन्होंने पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर अपने साहस से विदेशी हुक्मरानों को स्तब्ध कर दिया था। इन महिलाओं में स्कूल की छात्राओं से लेकर प्रौढ़ाएं तक शामिल थीं जिन्होंने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया था।

लेखिका ने सरलता की दृष्टि से क्रांति को तीन दौरों में विभक्त किया है। क्रांति का प्रथम दौर 1894 से लेकर 1915-16 तक, दूसरा दौर 1924 से 1934 तक और तीसरा दौर स्वतंत्रता प्राप्ति तक का है। इन सभी दौरों में महिलाओं की व्यापक भागीदारी रही लेकिन यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह भागीदारी देश के अन्य भागों में संभवतः उतनी व्यापक नहीं थी जितनी बंगाल में।

इस छोटी-सी पुस्तक में क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़ी सभी बहनों का परिचय सम्भव नहीं हो पाया है,लेकिन ऐसा नहीं है कि हम उन्हें भूल गये हैं। देश की महान वीरांगनाओं के बारे में समय-समय पर प्रकाशित अपने अन्य प्रकाशनों में हमने उन्हें भी शामिल किया है।

हमें आशा है कि हम सबकी पुस्तकमाला की अन्य पुस्तकों की तरह इस प्रकाशन का भी पाठक स्वागत करेंगे।

डा. श्यामसिंह शशि
निदेशक

विषय-प्रवेश

क्रांति-परंपरा और भारतीय स्त्रियां

विद्रोह, गदर, क्रांति, इन शब्दों के अर्थ कभी भी बहुत स्पष्ट नहीं रहे। जुल्म के खिलाफ समय-समय पर फूटे जन-असंतोष को शासकों ने अलग नाम दिया, शासितों ने अलग, क्योंकि दोनों की मंशा अलग होती है।

विदेशी जुल्मी शासन ने जिस विद्रोह को विप्लव, गदर, राजद्रोह कह कर कुचला, जुल्म के शिकार विद्रोहियों ने उसे ही स्वाधीनता-संग्राम और क्रांति का अर्थ देकर उस पर अपनी जान की बाजी लगा दी—

'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है'

—ये पंक्तियां अमर शहीद बिस्मिल की भावना मात्र ही नहीं हैं, पूरे क्रांतिकारी आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस अर्थ में कि सत्ता-मद में चूर शासक यदि विद्रोहियों को दबा कर, मार कर क्रांति को कुचलना जानते हैं, तो क्रांतिकारी उस क्रूर शासन को पलटने के लिए अपनी जान हथेली पर लिए घूमना, लड़ना और मरना भी जानते हैं।

तो जाहिर है कि क्रांति का उद्देश्य या अर्थ केवल जुल्म के खिलाफ लड़ना नहीं, उसके बाद शासन और समाज में परिवर्तन लाना भी है। फिर यह क्रांति अहिंसक हो या हिंसक सफल हो या असफल। दोनों प्रक्ष उसकी कुछ भी व्याख्या करें, यहां मात्र विद्रोह और क्रांति का अर्थ एकदम स्पष्ट है।

भारत के बारे में यह बात अधिक लागू होती है, क्योंकि यहां एक ही लक्ष्य (आजादी) के लिए स्वाधीनता-संग्राम हिंसक, अहिंसक दोनों तरीकों से लड़ा गया। सफलता बेशक गांधीजी की अहिंसक लड़ाई को अधिक मिली, लेकिन समय-समय पर किश्तों में जो संवैधानिक आजादी हमें मिली, उसके पीछे क्रांतिकारी झटकों का भी बहुत हाथ था, जिनसे डर कर अंग्रेजों को वे शासन-सुधार लाने पड़े। आजादी की लड़ाई को आखिरी मंजिल तक ले जाने वाला 1942 का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की 'आजाद हिंद फौज' का 'दिल्ली चलो' ऐलान और 1946 का 'नौसेना-विद्रोह' भी ऐसे ही तीन बड़े झटके थे।

लेकिन आजादी की लड़ाई की पृष्ठभूमि तो 1857 की क्रांति से भी बहुत पहले बन गई थी। उसी दिन से, जब 1757 में प्लासी के मैदान में भारतीयों की पहली हार हुई। अंग्रेज अभी इस भूमि पर अपने पैर ठीक से जमा भी न पाए थे कि उन्हें जगह-जगह विभिन्न विद्रोहों का सामना करना पड़ा। 1857 की क्रांति से पूर्व 1757 से 1856 तक एक पूरी सदी का इतिहास ऐसे सशस्त्र विद्रोहों से भरा पड़ा है: जैसे 'जंगल महाल का विद्रोह', 'संन्यासी विद्रोह', 'चुआड़ विद्रोह', 'कित्तूर विद्रोह', बैरकपुर का 'सैनिक विद्रोह', 'वहाबी विद्रोह', 'संथाल विद्रोह' आदि।

बैरकपुर के सैनिक विद्रोह और वहाबी विद्रोह को छोड़ कर, इन सभी में स्त्रियों ने न केवल भाग लिया, उन्होंने कई विद्रोहों का सफल नेतृत्व भी किया। इनमें से संन्यासी विद्रोह की नेता देवी चौधुरानी, चुआड़ विद्रोह की नेता रानी शिरोमणि,

कित्तूर की वीर रानी चेनम्मा, शिवगंगा स्टेट की विद्रोही वीरांगना वेलुनाचियार के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं। नेपाल की महारानी साम्राज्य लक्ष्मी देवी और पंजाब की रानी जिंदां, अंत में हार कर भी, जी-जान से लड़ी थीं। संथाल विद्रोह के दौरान दबी-कुचली आदिवासी स्त्रियों ने भी अपने कम जौहर नहीं दिखाए थे।

1857 की क्रांति में तो महिलाओं की व्यापक भागीदारी रही। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और लखनऊ की बेगम हजरत महल ने साथ-साथ क्रांति का नेतृत्व करके दिखा दिया था कि अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई में हिंदू-मुस्लिम सब एक हैं। यह देख कर ही तो बाद में अंग्रेज हुक्मरानों ने 'फूट डालो' वाली कूटनीति अपनाई थी। रानी तुलसीपुर, रानी रामगढ़, रानी तेज बाई, तुकलांई सुलतान, जमानी बेगम, महारानी तपस्विनी जैसी अन्य रानियां और बेगमें भी लड़ रहीं थीं, नर्तकी अजीजन जैसी निचले तबके की स्त्रियां भी और कुमारी मैना जैसी कोमल किशोरियां भी। इस क्रांति के दौरान हजारों स्त्रियां फांसी-गोली की शिकार हुईं और अनेक घर बर्बाद हुए। अकेले मुजफ्फर नगर में ही 255 स्त्रियों की शहादत का रिकार्ड मिलता है।

इस बड़ी क्रांति में भारी दमन-कार्यवाही के बावजूद, विद्रोह दब नहीं गए थे। कूका विद्रोह, निलहों का विद्रोह व अन्य छिटपुट विद्रोहों के रूप में आगे भी यह परंपरा निरंतर जारी रही। पर अभी तक के इन सब विद्रोहों का स्वरूप व महत्व प्रायः क्षेत्रीय और स्थानीय रहा, जबकि आगे चलकर जो क्रांतिकारी संगठन बने— 'तरुण भारत सभा', 'भारत मेला', 'अभिनव भारत समिति', 'मित्र मेला', 'युगान्तर दल',

'अनुशीलन समिति', 'गदर पार्टी', 'दीपाली संघ', 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी', 'भारत नौजवान सभा' आदि – उनकी गुप्त कार्यवाहियों में बिखराव होने भर भी उनका उद्देश्य समान था, स्वरूप राष्ट्रीय था और सम्पर्क-सूत्र अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी, जापान तक फैला था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संगठित नेतृत्व में लड़ी गई वैधानिक और अहिंसक लड़ाई के साथ-साथ ही ये गर्मजोश गतिविधियां भी बराबर चलती रहीं। फिर चाहे वह लोकमान्य तिलक के 'गरम दल' की सहयोगी डा० ऐनी बेसेंट की 'होम रूल लीग' हो, या भीखई जी कामा द्वारा विदेश से फूंका गया क्रांति का शंखनाद। सरफरोश प्रीतिलता की शहादत हो, या गवर्नर के बंगले में घुस कर उस पर गोली दागने वाली दो स्कूली छात्राओं—शांति घोष और सुनीति चौधरी का किशोर-साहस। सरला देवी चौधरी का सुचारु क्रांति-संगठन हो, या कल्पना दत्त, बीना दास, उज्ज्वला मजूमदार जैसी वीर क्रांतिकारी युवतियों की सीधी व छापामार लड़ाई। अरुणा आसफअली का भूमिगत आन्दोलन हो, या उषा मेहता का भूमिगत रेडियो। 'रानी झांसी रेजिमेंट' की वीरांगनाएं हों या 'नौ-सेना विद्रोह' के समर्थन-जुलूसों पर गोली-वर्षा में शहीद नारियां। हमारी आजादी की लड़ाई का लंबा इतिहास ऐसी मिसालों से भरा पड़ा है।

क्रांतिकारियों के कार्य में प्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण सहयोग देने वाले दुर्गा भाभी, सुशीला देवी, सुनीति देवी, मृणालिनी देवी, श्री देवी, प्रकाशवती, लीला नाग, इंदुमती सिंह, सुहासिनी गांगुली, सावित्री देवी, रल्ली देई, शास्त्री देवी, ऐसू बाई जैसे

सैकड़ों नामों से लेकर उजली मिसालों की यह परंपरा अप्रत्यक्ष सहयोग के हजारों लाखों नामों तक फैली है। कुछ नाम उभर कर सामने आए, शेष न जाने कितने ही गुमनामी के अंधेरे में गुम हो गए। यहां तक कि 3-4 से 6-7 साल तक जेल में रहने वाली अनेक क्रांतिकारी महिलाओं के भी जेल-सजा के रिकार्ड तो मिलते हैं, उनके बारे में अन्य जरूरी जानकारियां नहीं। पर इससे उनकी कुरबानी या महत्वपूर्ण भागीदारी का महत्व तो कम नहीं हो जाता! जानी-पहचानी और अनजानी-अनचीन्ही इन सभी क्रांतिकारी नारियों को मेरी मुखर-मौन श्रद्धांजलि का ही एक प्रयास है, यह पुस्तक।

नारी के क्रांति-चरित्र और उसके साहस-सहयोग की दृष्टि से विचार करें तो यह इतिहास सृष्टि के आदिकाल तक भी खिंच जाएगा। पौराणिक देवासुर-संग्राम के समय राक्षसों को परास्त करने के लिए देवताओं को भी नारी के सहयोग की जरूरत पड़ी थी और उसने समय पर दुर्गा, काली, महाकाली बन, असुरों का वध करके देवताओं को उनकी स्वाधीनता बहाल की थी। आदि नारी का यह महान क्रांतिकारी रूप ही उसे मानवता के इतिहास में देवताओं से भी ऊपर देवी मां, मां दुर्गा, , महाशक्ति और महाकाली के रूप में प्रतिष्ठित कर गया। महादेव शिव तक महाकाली की उपासना करते थे। तब से लेकर आज तक नारी के इस शक्ति रूप की पूजा-अर्चना होती आई है तो उसके इस क्रांति-चरित्र के ही कारण, जो शांतिकाल में ममतामय है, तो आपद्काल में रक्षक और संहारक भी।

बहरहाल, इस छोटी पुस्तक की सीमा के भीतर क्रांति-कार्यक्रमों में स्त्री-भागीदारी के विस्तार में जाना संभव

नहीं। अगले पृष्ठों में अपनी गुप्त गतिविधियों और आतंककारी कार्यवाहियों से इस देश से अंग्रेजी शासन की जड़ें हिलाने वाली प्रमुख क्रांतिकारी नारियों का परिचय दिया जा रहा है ताकि सरल भाषा-शैली में देश के दूरदराज क्षेत्रों में बैठे कम शिक्षित या नवसाक्षर पाठकों तक भी यह प्रेरणा पहुंच सके।

इस पुस्तक को तैयार करने में सर्वाधिक सहायता बंगला पुस्तक 'स्वाधीनता संग्रामे बंगलार नारी' से ली गई है। मैं इसकी लेखिका सुश्री कमला दासगुप्ता एवं प्रकाशक वसुधारा प्रकाशनी, कलकत्ता के प्रति आभार प्रकट करती हूं।

यह प्रेरणा जितनी व्यापक हो सकेगी, मैं अपना श्रम उतना ही सफल मानूंगी।

आशा रानी व्होरा

विषय-सूची

(ख) पंजाब व उत्तरप्रदेश की प्रमुख क्रांतिकारी महिलाएं

पहला दौर

(1894-1916)

क्रूर यातनाओं पर भी अडिग रहने वाली

ननी बाला देवी

भूली-बिसरी क्रांतिकारी महिलाओं में ननी बाला देवी बंगाल का एक ऐसा नाम है, जिनकी कहानी पढ़-सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हावड़ा में 1888 में जन्मी ननी बाला देवी 1916 में विधवा हो गई थीं। उन्होंने विप्लवी अमरेन्द्रनाथ चटर्जी से दीक्षा ली और क्रांतिकारी दल की गतिविधियों में सक्रिय हो गईं।

क्रांति के प्रथम दौर में क्रांतिकारियों के लिए आश्रय-स्थल जुटाने, फंड एकत्र करने, गुप्त दस्तावेज इधर से उधर पहुंचाने, युवक-युवतियों को प्रशिक्षित करने आदि सभी कार्यों में ननी बाला देवी का योगदान था पर वह पुलिस की पकड़ में नहीं आती थीं। पुलिस से छिपने के लिए कुछ दिन वह पेशावर भी चली गई थीं। उनके भूमिगत रह कर काम करने के कारण पुलिस को उनकी सूचना देने वाले के लिए पुरस्कार की घोषणा करनी पड़ी थी।

एक दिन वह हैजे से पीड़ित हो कर घर पर आराम कर रही

थीं कि पुलिस को खबर मिली और वह उसी हालत में गिरफ्तार कर ली गईं। उनसे सूचनाएं प्राप्त करने के लिए पुलिस उनसे अमानवीय ढंग से पेश आई। उन्हें बहुत यातनाएं दी गईं। नंगा करके इतना पीटा गया कि वह अधमरी हो गईं। तब भी पुलिस को उन्होंने कुछ नहीं बताया।

उन्हें दी जाने वाली क्रूर यातनाएं तीन दिन तक लगातार जारी रहीं। इन तीन दिनों में उनकी हालत पागलों जैसी हो गई। कभी बेहोश हो जातीं, कभी होश में आने पर फिर बड़बड़ाने लगतीं। पर अपनी बड़बड़ाहट में भी वह अंग्रेजों के विरुद्ध आक्रोश और घृणा ही उगलतीं। अपनी नीम बेहोशी, अर्ध विक्षिप्तावस्था में भी उन्होंने पुलिस को कोई सूचना नहीं दी। पुलिस अधिकारी उनकी ऐसी दृढ़ता व बहादुरी देखकर हक्के-बक्के रह गए। तंग आकर उन्होंने ननी बाला देवी को और यातनाएं देना बन्द कर दिया।

पर अभी उनकी परीक्षा और बाकी थी। उनके साथ जेल में दुकड़ी बाला नाम की एक गरीब क्रांतिकारी युवती भी थी। उस के पास से पिस्तौल बरामद होने पर उसे 'आर्म्स एक्ट' में दो साल की कड़ी कैद की सजा दी गई। जेल-अधिकारी उससे जबर्दस्ती इतना श्रम लेते थे कि वह बेहाल हो जाती थी। इसके विरोध में ननी बाला देवी ने जेल में भूख-हड़ताल कर दी।

ननी बाला देवी की एक मांग यह भी थी कि जेल में खाना पकाने के लिए ब्राह्मण स्त्री रखी जाए। जेल-अधिकारी उनसे फिर परेशान हो गए। किसी भी तरह उन्हें खाना खिलाने में असमर्थ रह कर जब सुपरिटेंडेंट ने उनसे पूछा, "कैसे खाएंगी?" तो उनका उत्तर था, "मां शारदा देवी के पास ले

जाएं, तब।" और उन्होंने शारदा देवी के नाम पत्र लिख कर सुपरिंटेंडेंट को दे दिया।

सुपरिंटेंडेंट ने पत्र फाड़ कर उसके टुकड़े उनके आगे बिखेर दिए और उन्हें कस कर थप्पड़ मारा। दूसरा मारने जा रहा था कि भूख-हड़ताल से कमजोर पड़े हाथों से ननी बाला देवी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कड़क कर बोली, "हम स्वतंत्रता-सैनिक और राज्य-कैदी हैं, तुम्हारे निजी गुलाम नहीं। तुम हम पर यूं ही जुल्म नहीं कर सकते।" सुपरिंटेंडेंट का हाथ रुक गया और वह मुंह लटकाए चला गया। उसके बाद भी दुकड़ी बाला की मेहनत कम करने पर ही 21 दिन बाद उन्होंने अपनी भूख हड़ताल तोडी थी।

1919 में वह जेल से रिहा हुईं। पर ऐसी साहसी देशभक्त नारी को भी बाद में किसी ने सहारा नहीं दिया। उनका घरबार, माल-असबाब सब छिन चुका था। अब वह एक छोटी सी झुग्गी में रह कर अभाव, कष्ट व बीमारी से जर्जर शरीर का भार ढो रही थीं। उनके पुराने क्रांतिकारी साथी या तो तितर-बितर हो चुके थे या मौत के घाट उतारे जा चुके थे। अंग्रेजों के डर से उन्हें दूसरों ने तो क्या, अपने रिश्तेदारों तक ने सहारा नहीं दिया।

देश की खातिर उन्होंने कितना त्याग किया! कितना अपमान झेला! कितना कष्ट सहा! पर लोग जैसे उन्हें भूल चुके थे। इस विडंबना की कचोट उन्हें अन्तिम समय तक रही। आज भी क्या देशवासी उनका नाम तक जानते हैं?

जिन्हें असहनीय कष्ट दिए गए

दुकड़ी बाला देवी

दुकड़ी बाला देवी का जन्म 1887 में हुआ था। वह वीरभूम जिला के नलहटी थाना के झाऊपाड़ा गांव की, एक अनपढ़, गरीब लड़की थीं। उनके पिता नीलमणि चट्टोपाध्याय क्रांतिकारियों से सहानुभूति रखते थे। एक बार ज्योतिष घोष नाम के एक क्रांतिकारी उनके घर में आकर ठहरे। वह नलिन बाबू के नाम से आए थे और विपिन बाबू के नाम से लौटे थे। वहां रह कर व्यायाम कक्षाएं चलाते रहे थे, जिसमें लाठी, छुरा चलाने का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

दुकड़ी बाला को यह सब जानने की जिज्ञासा हुई। अपने भानजे से पूछा तो उसने कहा, "मौसी, तुम क्या करोगी यह जान कर? क्या तुम्हें पढ़ना-लिखना आता है?" बात दुकड़ी बाला को लग गई। वह भानजे से पढ़ना-लिखना सीखने लगीं। फिर लुका-छिपा कर क्रांतिकारी आन्दोलन से संबंधित चीजें भी पढ़ने लगीं। भानजा निवारण घटक स्वयं क्रांतिकारी था। जिद करके दुकड़ी बाला ने उससे छुरा और बंदूक चलाना भी सीख लिया।

दुकड़ी बाला की शादी फणिभूषण चक्रवर्ती से हुई तो पति भी इस काम में सहायक मिले। दुकड़ी बाला का भानजा

चोरी-छिपे लाए हथियार इस घर में भी छिपा कर रखने लगा। हरिदास दत्त नामक एक विप्लवी ने छद्म वेश में एक शस्त्र-कंपनी के गोदाम से 200 हथियारों का एक बक्सा चुरा लिया था। इसी चोरी की खोज में जनवरी 1917 में दुकड़ी बाला का घर भी घेर लिया गया। तलाशी के बाद वहां से चोरी की सात पिस्तौलें मिलीं। दुकड़ी बाला देवी गिरफ्तार हो गईं।

गिरफ्तारी के बाद दुकड़ी बाला को बहुत यातनाएं दी गईं कि वह हथियार-चोरी में शामिल सभी लोगों के नाम-पते बताएं। पर उन्होंने मुंह नहीं खोला। उनकी गोद में छोटा सा दुधमुंहा बच्चा था। उसे भी जेल में साथ रखने की इजाजत नहीं दी गई। विशेष अदालत ने उन्हें दो साल के कड़े श्रम के साथ कारावास की सजा दी। भानजा निवारण घटक पांच साल की सजा पाकर पहले ही जेल पहुंच चुका था।

गरीब स्त्री समझ कर जेल में दुकड़ी बाला देवी पर बहुत अत्याचार किया गया। **उनसे इतना कठिन श्रम लिया जाता था कि बेचारी बेदम हो जाती थीं। सख्त बान बंट-बंट कर उनके हाथ छिल गए थे। जेल-रसोई का आटा भी चक्की पर उन्हीं से पिसवाया जाता था। ननी बाला देवी उन दिनों उसी जेल में थीं। उनसे दुकडी बाला का यह कष्ट देखा नहीं गया और उन्होंने इसके विरोध में जेल में भूख-हड़ताल कर दी।** अधिकारियों की जोर-जबर्दस्ती के बावजूद, ननी बाला देवी ने अपनी भूख-हड़ताल तभी खोली थी, जब दुकड़ी बाला देवी का श्रम घटा दिया गया था।

जेल में इतना कष्ट पाने पर भी दुकड़ी बाला देवी घर पर पिता को यही लिखती थीं कि वह ठीक हैं। दिसम्बर 1918 में उन्हें जेल से रिहाई मिल गई।

क्रान्तिकारियों को बचाने के लिए दर-दर भटकने वाली

क्षीरोदा सुन्दरी चौधरी

30 जून, 1961 को डिप्टी सुपरिटेंडेंट पुलिस बसन्त चटर्जी की हत्या के बाद सुरेन्द्र मोहन घोष और क्षितीश चौधरी के वारंट निकले तो वे दोनों भूमिगत हो गए। भागकर मैमनसिंह चले गए और वहां पुलिस-क्लब की बगल में ही मकान लेकर रहने लगे कि पुलिस को शक न हो। हुआ भी वही। पुलिस उन्हें इधर-उधर ढूंढ़ती रही और ये दोनों क्षीरोदा सुन्दरी को साथ लेकर पुलिस की नाक के नीचे रहते रहे। कुछ दिन बाद 'भारत-जर्मन षड्यंत्र' के सर्व प्रमुख नेता यदु गोपाल मुखर्जी और प्रसिद्ध विप्लवी नलिनीकान्त भी आकर वहीं रहने लगे। क्षीरोदा सुन्दरी इनके साथ छद्म मां बन कर रहती थीं।

क्षीरोदा सुन्दरी का जन्म मैमनसिंह जिला के सुंदाइल गांव में 1883 में हुआ था। पिता शिवसुन्दर राय और माता दुर्गा सुन्दरी देवी की इस लड़की का विवाह खारूआ ग्राम के बृज किशोर चौधरी से हुआ था। लेकिन 32 साल की उम्र में वह विधवा हो गई थीं। विप्लवी क्षितीश चौधरी उनके देवर का लड़का था। मैमनसिंह के प्रसिद्ध विप्लवी नेता सुरेन्द्र मोहन घोष के साथ 'युगान्तर दल' में काम करते हुए क्षितीश चौधरी को अपनी इस चाची से बहुत सहायता मिली। उनके फरारी

जीवन में क्षीरोदा सुन्दरी को भी उनके साथ भूमिगत हो जाना पड़ा। इसी सिलसिले में उन्हें अनेक कष्ट झेलते हुए यहां-वहां भटकना भी पड़ा। पुलिस पीछे लगी रहती थी और ये लोग एक से दूसरी जगह बदलते हुए छिपते रहते थे। सुरेन्द्र मोहन घोष के पिता कामिनी मोहन घोष विप्लवी दल के प्रतिष्ठित नेता थे और क्षितीश चौधरी की यह चाची दल की प्रतिष्ठित मां। इनकी छाया में रहते हुए अनेक क्रान्तिकारियों ने पुलिस को खूब चकमे दिए और पकड़ में नहीं आए।

जैसे ही इन लोगों को खबर मिली कि मैमनसिंह पुलिस-क्लब के पास वाला घर पुलिस की निगाह में आ गया है, क्षीरोदा सुन्दरी को साथ लेकर सभी लोग नारायण गंज के देवभोग स्थान में चले गए। केवल नेता सुरेन्द्र मोहन घोष इनके साथ न जाकर कहीं अन्यत्र निकल गए। अब तो पुलिस इनकी खोज में सारे बंगाल का चप्पा-चप्पा छान रही थी। जैसे ही भनक पड़ती, ये लोग पुलिस-घेरा तोड़ कर भी भेष बदल कर निकल जाते। इसी तरह देवभोग से सरिषाबाड़ी, फिर वहां से जमालपुर, सीराजगंज। हर जगह क्षीरोदा सुन्दरी मां बन कर उन्हें आश्रय देती रहीं। यदु गोपाल मुखर्जी, नलिनीकान्त, सतीश ठाकुर, नगेन्द्र शेखर चक्रवर्ती, उषा राय, पृथीष बसु, क्षितीश चौधरी आदि अनेक क्रान्तिकारी इस मां की शरण में रहने के लिए आते-जाते रहे।

आगे चलकर तो ऐसा समय आया कि महीने-डेढ़ महीने बाद ही इन्हें जगह बदलनी पड़ जाती। अन्त में धुबड़ी गांव चुनना पड़ा। पहले दो लोग वहां माछ-भात का होटल खोलने भेजे गए। फिर सभी लोग जाकर इस गांव में बस गए।

गिरीन्द्रनाथ राय एक नया नाम भी यहां आ जुड़ा। कुछ लोग होटल में रहते, कुछ अलग मकान में। क्षीरोदा सुन्दरी यहां भी मां का दायित्व निभाती रहीं। पर इस सुदूर गांव में भी ये लोग डेढ़ महीना से अधिक नहीं रह सके। अपने गुप्तचरों से यह सूचना मिलते ही कि पुलिस इधर भी पहुंचने वाली है, ये लोग असम के जंगलों में भाग गए। । घने जंगल के बीच पास-पास बने असम के छोटे-छोटे गांवों में बिखर कर रहते हुए अब ये लोग स्वयं को काफी सुरक्षित पा रहे थे। क्षीरोदा सुन्दरी दो महीने तक यहां भी इनके साथ रहीं।

लम्बे समय तक घर से गायब रहने के कारण क्षीरोदा सुन्दरी के रिश्तेदारों को चिन्ता हुई। उनके गांव में तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगी थीं। तब क्रान्तिकारियों को लगा, अब इनका आश्रय लेना हम सब के लिए ठीक नहीं होगा। यह सोच कर उन्होंने क्षीरोदा सुन्दरी को काशी भेज दिया। कुछ समय तक वह काशी में रहीं, फिर वहां से अपनी ससुराल खारूआ गांव लौट गईं। काशी रहते हुए भी उन्होंने कई जगहें बदलीं। फिर एक धर्मशाला के रजिस्टर में साथी क्रान्तिकारियों के लिए एक गुप्त संदेश छोड़ दिया कि वह अपने गांव जा रही हैं।

जैसे ही पुलिस को खबर मिली कि क्षीरोदा सुन्दरी खारूआ गांव लौट आई हैं, पुलिस ने अचानक उस मकान पर घेरा डाल दिया। पूछताछ शुरू हुई। क्षीरोदा सुन्दरी ने कहा, "मैं तो काशी में थी। आप फलां फलां धर्मशाला से पूछ लीजिये।" क्षीरोदा सुन्दरी ने तीन-चार धर्मशालाओं के नाम-पते पुलिस को बता दिए। केवल वह पता नहीं बताया, जहां उन्होंने क्रान्तिकारियों के लिए गुप्त संदेश छोड़ा था। इसलिए पुलिस

पूछताछ करके निराश वापस लौट आई। क्षीरोदा सुन्दरी को गिरफ्तार करके भी, कोई प्रमाण न मिलने के कारण, शीघ्र रिहा कर देना पड़ा।

क्षीरोदा सुन्दरी की 1916-17 की यह कहानी तब प्रकाश में आई, जब 1959 में 76 साल की उम्र में उन्होंने खुद इसे लिखा।

'इंडो-जर्मन षड्यंत्र' से संबंधित

सुशीला मित्र

सुशीला का जन्म 1983 में त्रिपुरा जिले के आशीकांठी गांव में हुआ। पिता श्री गुरचरण घोष क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखते थे। माता सरला बालां घोष त्रिपुरा 'महिला हित साधनी सभा' की कार्यकर्त्री थीं। इस सभा द्वारा मां लड़कियों को स्कूल भेजने का अभियान चलाया करती थीं। उस जमाने में पांचवीं तक शिक्षा लड़कियों के लिए बड़ी बात मानी जाती थी। सुशीला घोष का विवाह भी प्राइमरी शिक्षा के बाद नोआखली जिला के गांव गाबुआ के कुमुदिनी कान्त मित्र के साथ कर दिया गया था।

सुशीला मित्र के दो देवर सत्येन और सचिन 'युगान्तर दल' के सदस्य थे। इसलिए 1914-15 में उनके गाबुआ गांव में कथित 'इंडो-जर्मन षड्यंत्र' के विप्लवी लोगों के मिलने-ठहरने के लिए सुरक्षित जगह बनाई गई थी। दोनों देवरों ने अपनी भाभी सुशीला मित्र को भी क्रांतिकारियों की सहायता के इस कार्य में साथ ले लिया। सुशीला मित्र जाहिरा तौर पर वासन्ती देवी के साथ 'असहयोग आंदोलन' में काम कर रही थीं। पर अपने देवरों और उनके विप्लवी साथियों को गुप्त सूचनाएं पहुंचाने, चन्दा इकट्ठा करके धन देने और उनके लिए आश्रय-स्थल जुटाने का क्रांति-कार्य भी कर रही थीं।

26 जनवरी, 1932 को एक सार्वजनिक स्थल पर गैरकानूनी झंडा फहराने के अपराध में वह गिरफ्तार हुईं और 6 महीने के लिए जेल भेज दी गईं। क्रांति-कार्य में उनकी मदद के बारे में किसी को कोई सन्देह नहीं हुआ, अन्यथा उन्हें लंबी सजा होती। जेल जाने के समय उनके बच्चे बहुत छोटे थे। पर पुलिस के फुसलाने पर भी उन्होंने आगे आन्दोलन में भाग न लेने का बांड भरने से इंकार कर दिया था। रिहाई के बाद 1933-38 के बीच वह कृषकों-मजदूरों की कल्याण-संस्थाओं में कार्य करती रहीं। 1943 के बंगाल-अकाल के समय और 1946 में विभाजन पूर्व दंगों के समय उन्होंने जमकर राहत-कार्य भी किया। 1948 में कलकत्ता आ गईं और 'महिला आत्म-रक्षा समिति' की अध्यक्ष के नाते कार्य करने लगीं।

दूसरा दौर

(1924-1934)

(क) बंगाल की प्रमुख क्रांतिकारी महिलाएं

'दीपाली संघ' की संचालिका

लीला नाग (राय)

क्रांतिकारी महिलाओं की प्रसिद्ध संस्था 'दीपाली संघ' की संस्थापिका लीला नाग एक महान क्रांतिकारी महिला थीं। उनके पिता गिरीशचन्द्र नाग बंगाल में सरकारी उच्चाधिकारी थे। फिर भी छिपे तौर पर उन्होंने रासबिहारी बोस जैसे गरम दलीय नेता की सहायता की थी और उन्हें छद्म नाम से भारत से बाहर जाने का 'पासपोर्ट' दिलाया था। उनकी मां कुंज लता नाग भी एक शिक्षित महिला थीं, जिन्होंने बालिका लीला नाग को आदर्श जीवन की शिक्षा दी।

बेथुने कालेज से अंग्रेजी आनर्स में बी.ए. की डिग्री उन्होंने छात्राओं में प्रथम स्थान लेकर 1921 में प्राप्त की, 1923 में एम.ए. ढाका विश्वविद्यालय से किया। वह 'छात्र संघ' की सेक्रेटरी रह चुकी थीं और 'निखिल बंगाल महिला-मताधिकार कमेटी' की सदस्या भी रही थीं। कांग्रेस-आंदोलन से भी

प्रभावित थीं। दिसम्बर 1932 में **उन्होंने ढाका के सुप्रसिद्ध 'दीपाली संघ' की स्थापना की, जिसका सामान्य उद्देश्य शिक्षा द्वारा लड़कियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास था और विशेष उद्देश्य था, उन्हें क्रान्तिकारी आंदोलन के लिए प्रशिक्षित करना।**

1929 में श्री अनिल राय से विवाह के बाद लीला नाग से लीला राय बन, वह जगह-जगह जन-सभाओं में भाषण करने लगीं और एक लोकप्रिय वक्ता बन गईं। उनके प्रभाव का इतना विस्तार हुआ कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें शांति निकेतन में आमंत्रित किया। लेकिन उन्हें नम्रता से इंकार कर वह क्रान्तिकारी गतिविधियों में ही सक्रिय हो गईं। इसके पीछे उनके पति की भी प्रेरणा थी, जो 'श्री संघ' के संस्थापक, सुप्रसिद्ध नेता और क्रांतिकारी थे।

ढाका के इन्सपेक्टर जनरल पुलिस की दिन दहाड़े हत्या के पीछे लीला राय और उनके पति अनिल राय का भी हाथ था। लेकिन उनकी बुद्धिमत्ता के कारण पुलिस को उन पर संदेह नहीं हुआ। पर 18 अप्रैल, 1930 को 'चटगांव शस्त्रागार कांड' के समय अनिल राय पहले हमले में ही शामिल थे। इसलिए उन्हें गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया गया।

पति की गिरफ्तारी के बाद लीला राय ने 'श्री संघ' और 'दीपाली संघ' दोनों का भार संभाल लिया। ढाका और कलकत्ता के बीच छिपे तौर पर गोला-बारूद और शस्त्र लाने ले-जाने का काम 'दीपाली संघ' की सदस्याएं ही करती थीं। शहीद प्रीतिलता और अनेक प्रसिद्ध क्रांतिकारी बंगाली लड़कियां इसी 'दीपाली संघ' की सदस्याएं थीं।

इसके बाद लीला राय के लिए गुप्त रूप से अपनी गतिविधियां जारी रखना आसान काम नहीं रह गया था। 20 दिसम्बर, 1931 को 'बंगाल अध्यादेश' के अन्तर्गत उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। 6 साल बाद 8 अक्तूबर, 1937 को वह रिहा हुईं। इस दौरान जेल में कैदियों की मांगों को लेकर उन्हें दो बार भूख हड़ताल करनी पड़ी थी।

अपनी गिरफ्तारी से सात महीने पहले लीला राय ने महिलाओं की एक पत्रिका 'जयश्री' का सम्पादन-संचालन भी किया था। पत्रिका के उद्घाटन के समय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर उपस्थित थे। इस पत्रिका के माध्यम से उनके जोशीले विचारों के कारण भी उनकी गिरफ्तारी निकट आ गई थी। 12 दिसम्बर, 1981 को इसी पत्रिका 'जयश्री' की 'स्वर्ण जयन्ती' का उद्घाटन करते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी ने श्रीमती लीला राय के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

प्रथम क्रांतिकारी शहीद

प्रीतिलता वादेदार

बंगाल के अग्रणी क्रांतिकारी नेता सूर्यसेन के दल की एक साथी कुमारी प्रीतिलता वादेदार भारत की 'पहली क्रांतिकारी महिला शहीद' है। अपनी छोटी सी उम्र में उसने शौर्य और बलिदान की एक अद्‌भुत मिसाल कायम की थी।

18 अप्रैल, 1930 को 'चटगांव शस्त्रागार कांड' के बाद ब्रिटिश सेना और क्रांतिकारियों में जम कर संघर्ष ठन गया था। जलालाबाद में हुई एक सीधी मुठभेड़ में ब्रिटिश सेना के अनेक सैनिक मारे गये और कई क्रांतिकारी शहीद हो गए। सैनिक असंख्य थे, क्रांतिकारी कुछ थोड़े से लोग। शस्त्रागार कांड के नेता सूर्यसेन ने सोचा, इस तरह तो हमारी ताकत जल्दी ही चुक जाएगी। उन्होंने अपने दल को छिप कर छापामार लड़ाई लड़ने का आदेश दे दिया। कुमारी प्रीतिलता वादेदार इसी छापामार दल की एक सदस्या थी।

दल के लोग अपूर्व सेन, निर्मल सेन, सूर्यसेन, प्रीतिलता अपने कुछ साथियों को खोने के बाद पहाड़ी से नीचे ढलुआं जमीन पर उतर कर तितर-बितर हो गए। पुलिस पीछा करने लगी। स्थिति को नाजुक समझ, नेता सूर्यसेन ने आदेश दिया, "हथियार सम्हालो और मुकाबला करो।"

12 जून, 1932 की रात को दूसरी सीधी मुठभेड़ में सूर्यसेन की गोली से केप्टन कैमरान मारा गया और ब्रिटिश सेना की गोलियों से अपूर्व सेन व निर्मल सेन शहीद हो गए। सूर्यसेन और प्रीतिलता ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। गोलियों का जवाब गोलियों से देते हुए ये दोनों किसी तरह बच कर भाग निकले।

प्रीतिलता और सूर्यसेन कुछ दिन तक दल की मददगार एक महिला सावित्री देवी के मकान में छिपे रहे (इस महिला को भी बाद में इसका दंड भुगतना पड़ा था)। ब्रिटिश सरकार ने नेता सूर्यसेन की गिरफ्तारी के लिए दस हजार के पुरस्कार की घोषणा कर रखी थी।

सूर्यसेन ने अपने साथियों की मौत का बदला लेने की एक योजना बनाई। योजना थी, पहाड़ी की तलहटी में स्थित एक यूरोपीय क्लब पर आक्रमण कर नाच-रंग में मस्त अंग्रेजों को मौत के घाट उतारना।

पिछली मुठभेड़ में प्रीतिलता का शौर्य व साहस देखकर उन्हें इस लड़की पर विश्वास बढ़ गया था। इसलिए सूर्यसेन ने कुछ साथी साथ भेजकर इस 'एक्शन' का नेतृत्व प्रीतिलता को ही सौंपा। फिर भी भेजते समय उन्होंने प्रीतिलता से कहा, "देखो बहन, गिरफ्तार होकर पुलिस द्वारा अपमानित होने की अपेक्षा मर जाना कहीं अच्छा है। यदि संघर्ष से बच कर आने का अवसर न मिले तो विष-पान कर वहीं शहीद हो जाना।"

यह प्रीतिलता की नेता सूर्यसेन से अंतिम भेंट थी और सूर्यसेन का अपनी एक विश्वासपात्र क्रांतिकारी साथी को अंतिम संदेश।

फिर आई, 24 सितम्बर, 1932 की वह रोमांचक रात! अपनी एक साथी कल्पना दत्त से ली गई 'पोटाशियम साइनाइड' की पुड़िया जेब में रख कर, बमों-पिस्तौलों से लैस होकर और एक दल साथ लेकर कुमारी प्रीतिलता अपने लक्ष्य की ओर रवाना हुई।

क्लब में रात के समय अंग्रेज स्त्री-पुरुष शराब पीकर राग-रंग में मस्त थे। नृत्य-संगीत चल रहा था। **क्लब के फाटक पर पहुंचते ही प्रीतिलता ने अपने साथियों को ललकारा, "प्यारे साथियो, बढ़ो। जल्दी करो। आज एक भी अंग्रेज यहां से बचकर न जाने पाए।"**

इस ललकार के साथ ही क्लब की इमारत बमों के धमाकों और पिस्तौल की गोलियों से हिल उठी। भीतर का राग-रंग चीख-पुकार में बदल गया। एक यूरोपियन महिला धराशायी हो गई। तेरह अंग्रेज बुरी तरह जख्मी हो गए। कुछ भाग निकले। कुछ संभल कर उधर से गोली-वर्षा करने लगे। तभी एक गोली-प्रीतिलता के फूल-से शरीर में भी आ लगी। बचने की आशा न देख कर भी प्रीतिलता लड़ते-लड़ते, पहले की तरह ही भाग निकली।

अंग्रेज पीछा कर रहे थे और प्रीतिलता के शरीर में गोली से हुआ घाव रिस रहा था। उसने सोच लिया कि अब शहीद होने का समय आ गया है। अपने शरीर की भेड़ियों के हाथों दुर्गति कराने के बजाय, उसने वही किया जो उसकी पूर्व योजना थी और जो उसके नेता का आदेश था। उसने तुरन्त पुड़िया खोली और 'पोटाशियम साइनाइड' खा कर सम्मान से, शान से शहीद हो गई।

प्रीतिलता का जन्म मई 1911 में चटगांव में हुआ था। पिता जगतबंधु और माता प्रतिभामयी उसे पढ़ा-लिखा कर अध्यापिका बनाना चाहते थे। इसलिए परिवार में गरीबी के बावजूद, उसकी पढ़ाई पांचवें वर्ष में शुरू करवा दी गई थी। पढ़ने-लिखने में वह तेज भी थी। 1930 में आई.ए. की परीक्षा में प्रथम आई। फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से उसने विशेष योग्यता के अंक प्राप्त कर बी.ए. किया। उन्हीं दिनों लीला नाग के 'दीपाली संघ' और कल्याणी दास के 'छात्र संघ' से प्रशिक्षण लेकर वह सूर्यसेन के क्रांति-दल में शामिल हो गई।

कुमारी प्रीतिलता की आयु उस 'एक्शन' के समय केवल इक्कीस वर्ष की थी। फूल-सी नाजुक उम्र की एक लड़की! जब उसके खेलने खाने के दिन थे, उसने गोलियां झेलीं, और गोलियां खाईं। जब उसके हाथों-पैरों में मेंहदी लगाई जानी थी, उसके हाथों ने पिस्तौल थामी और पैरों ने कांटों की राह अपनाई। स्कूल में 'गर्ल गाइड' की सदस्या के रूप में सेवा-भाव और अनुशासन वह सीख चुकी थी। पर बालचर-संस्था के नियमानुसार जब उसे ईश्वर और ब्रिटिश सम्राट की वफादारी की शपथ लेनी पड़ती तो उसका मन विद्रोह कर उठता। अपनी सहेलियों से कहती, "ईश्वर और देश के प्रति वफादारी की शपथ लो, ब्रिटिश सम्राट के प्रति नहीं।" इस तरह क्रांति का बीजारोपण उसके बाल-मन में ही हो चुका था। फिर जब उसने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के बारे में पढ़ा, तो उसका मन भी देश के लिए कुछ कर गुजरने के लिए छटपटाने लगा। संयोग की बात कि प्रीतिलता की मौत भी लक्ष्मीबाई की तरह ही हुई।

सूर्यसेन से जब प्रीतिलता की भेंट हुई तब वह फरारी-जीवन

बिता रहे थे। उनके एक साथी रामकृष्ण विश्वास कलकत्ता की अलीपुर जेल में बन्द थे और उन्हें फांसी की सजा घोषित हो चुकी थी। उन दिनों ऐसे खतरनाक कैदी से मिलना कोई कम जोखिम की बात नहीं थी। पर प्रीतिलता रामकृष्ण विश्वास से जेल में लगभग चालीस बार मिली और अधिकारियों को जरा भी संदेह नहीं होने दिया। इसी घटना से प्रीतिलता की सूझबूझ और बहादुरी का प्रमाण सूर्यसेन को मिल गया था।

प्रीतिलता की शहादत के बाद ब्रिटिश अधिकारियों को उसकी तलाशी लेने पर जो कुछ हाथ लगा, वह था, एक छपा पैम्फलेट, जिस पर लिखा था, "चटगांव शस्त्रागार कांड और उसके बाद जो कुछ हो रहा है, वह भविष्य में होने वाले एक भीषण युद्ध का ही प्रारम्भिक रूप है। क्रांतिकारियों ने 18 अप्रैल, 1930 को यह संघर्ष छेड़ा है और यह तब तक चलता रहेगा जब तक कि देश पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं हो जाता।"

इतनी छोटी सी आयु और इतना बड़ा कार्य! प्रीतिलता क्रांतिकारी होने के साथ-साथ एक अच्छी लेखिका भी थीं। उसके निर्भीक लेखों की कितनी ही पंक्तियां दल के सदस्यों के मन में प्रेरणा जगाती थीं। नवयुवती प्रीतिलता की यह शहादत क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास का एक दर्दनाक, किन्तु गौरवशाली पृष्ठ है।

ब्रिटिश पुलिस से बार-बार टकराने वाली

कल्पना दत्त

असहयोग आंदोलन के दौरान 1922 में कुछ हिंसात्मक घटनाएं घट जाने से गांधीजी ने आंदोलन वापस ले लिया था। देश की युवा-शक्ति को इससे बड़ी निराशा हुई। क्रांतिकारियों ने बमों, पिस्तौलों के सहारे अंग्रेजों को इस देश से खदेड़ देने का संकल्प लिया। 1930 के आसपास चटगांव में उन दिनों सूर्यसेन का क्रांतिकारी दल सक्रिय था। कल्पना दत्त इसी दल की एक बहादुर क्रांतिकारी सैनिक थी।

16 वर्ष की उम्र और बहादुरी के दिल दहला देने वाले कारनामे! बरसती गोलियों के बीच तीर-सी निकल जाने वाली, बार-बार पुलिस-मुठभेड़ से बच निकलने वाली, जंगलों, पहाड़ों में घूम-छिपकर अंग्रेजी शासकों के छक्के छुड़ाने वाली कल्पना दत्त का नाम स्वाधीनता-संग्राम के क्रांतिकारियों में बड़े गर्व से लिया जाता है।

कल्पना का जन्म 27 जुलाई, 1914 को चटगांव में हुआ। माता का नाम शोभना देवी और पिता का विनोदबिहारी दत्त था। बचपन से ही इस बालिका को साहसी कहानियां सुनने का बड़ा शौक था। खास्तगीर बालिका हाई स्कूल में पढ़ते समय ही उसने अनेक कहानी-पुस्तकें और क्रांतिकारियों की जीवनियां

पढ़ डाली थीं। महापुरुषों और बहादुरों की जीवनियों में उसे विशेष आनंद आता था। बचे समय में वह व्यायाम करती और तैराकी सीखती ताकि बहादुरी के काम करने के लिए शरीर को मजबूत बनाया जा सके।

उसके दो चाचा आंदोलन में भाग ले रहे थे। एक चाचा ने कल्पना की रुचि देख, उसे कुछ ऐसा क्रांति-साहित्य लाकर दिया, जिससे उसका संकल्प और दृढ़ हो गया। 1928 में जब उसकी उम्र केवल 14 वर्ष थी, उन दिनों चटगांव के एक विद्यार्थी सम्मेलन में उसने जो भाषण दिया, तभी उसके भीतर छिपी शक्ति का आभास लोगों को मिल गया था। गरज कर बोलती थी, "अगर दुनिया में हमें गर्व से सिर ऊंचा करके जीना है, तो अपने माथे पर से गुलामी का यह कलंक मिटा देना होगा।"

सूर्यसेन के दल का एक सदस्य तारकेश्वर दस्तीदार अक्सर कल्पना के यहां आया करता था। उसने भी उसे क्रांति-साहित्य पढ़ने के लिए दिया और उसे दल में शामिल होने के लिए प्रेरित किया।

कलकत्ता के बेथुने कालेज के होस्टल में रहते हुए भी वह व्यायाम का अभ्यास करती रहती और मौके की तलाश में रहती। दस्तीदार उससे लगातार मिल रहा था और उसे प्रशिक्षण दे रहा था। कल्पना ने लाठी, तलवार, पिस्तौल, छुरा आदि चलाना सीख लिया। अप्रैल 1930 में श्री नेहरू की गिरफ्तारी पर उसने आगे बढ़ कर विरोध किया और कालेज में हड़ताल करवा दी। हड़ताल में उसे कामयाबी मिली तो कालेज के अधिकारी उसकी ओर से सतर्क हो गए।

उन्हीं तूफानी दिनों में 18 अप्रैल, 1930 को क्रांतिकारियों ने चटगांव के शस्त्रागार पर भारी हमला कर उसे लूटा और अपने कब्जे में ले लिया। इस अचानक हमले से अंग्रेज शासक पहले हक्के-बक्के हुए, फिर बौखला गए। चटगांव के चप्पे-चप्पे पर पुलिस बिठा दी गई। वहां 'कर्फ्यू' लगा दिया गया। बड़ी कठिनाई से कल्पना कलकत्ता से चटगांव आई और उसने दल के लोगों से संपर्क किया।

चटगांव के क्रांतिकारियों पर जेल में मुकदमा चल रहा था। बाहर के साथियों ने तय किया कि जिस दिन रामकृष्ण और दिनेश गुप्त को फांसी की सजा दी जाए, उसी दिन 'डाइनामाइट' से जेल उड़ा दी जाए। बड़े पैमाने पर तैयारी हो गई। **जेल उड़ाने का काम कल्पना व उसके साथियों को मिला।** पर किसी सूत्र से पुलिस को खबर मिल गई और उनकी योजना पर अमल नहीं हो पाया। 17 सितम्बर, 1932 की उस रात पहाड़ी तल्ला के निकट पुरुष-वेष में घूमती हुई कल्पना दत्त पुलिस के हाथ पड़ गई। कल्पना पर मुकदमा चलाया गया। सात दिन बाद 24 सितम्बर को यूरोपियन क्लब पर हमले में प्रीतिलता शहीद हो गई।

रामकृष्ण व दिनेश गुप्त को फांसी दे दी गई। गणेश घोष, लोकनाथ बल आदि कई क्रांतिकारी साथी पकड़ कर जेल भेज दिए गए। अनन्त सिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। कल्पना पर दफा 109 में अभियोग था कि उसने अपने घर में चटगांव-शस्त्रागार के हथियार छुपाए और लड़कियों को क्रांतिकारी दल में शामिल होने के लिए भड़काया। अभियोग ठीक थे, पर पूरी तरह राजनीतिक थे। ये अभियोग दफा 109 में

नहीं लगाए जा सकते थे। इसलिए कल्पना जमानत पर छूट गई। परन्तु उसके घर पर सशस्त्र पुलिस का पहरा बैठा दिया गया।

अब कल्पना न कहीं जा सकती थी, न आ सकती थी। उसकी हर गतिविधि पर कड़ी नजर रखी जा रही थी। कल्पना जैसी तेज-तर्रार लड़की को यह कैसे सहन होता। मास्टर दा (नेता सूर्यसेन) का संदेश पाकर किसी तरह मौका निकाल, वह घर से भाग गई और सूर्यसेन के साथ जगह-जगह भटकने लगी। कहीं आना-जाना खतरे से खाली न था। पुलिस जगह-जगह क्रांतिकारियों का पीछा कर रही थी और कल्पना इस फरारी जीवन में भी कारतूस बनाना सीख रही थी।

एक दिन कल्पना, सूर्यसेन व अन्य साथी गोशल गांव के एक मकान में छिपे थे कि पुलिस वहां भी पहुंच गई। स्थिति को तुरन्त भांप, ये लोग पिछली ओर से भाग निकले। सिर पर आई बड़ी मुसीबत टल गई।

पर कब तक? 16 फरवरी, 1933 को सूर्यसेन और कल्पना रात का खाना खाकर किसी काम से निकले कि रास्ते में पुलिस से मुठभेड़ हो गई। दो घन्टे के आमने-सामने युद्ध के बाद नेता सूर्यसेन गिरफ्तार हो गये। कल्पना फिर भी छिप-छिप कर शत्रु पर गोली चलाती हुई भाग निकलने में सफल रही। रास्ते में तेज बारिश से वह बुरी तरह भीग गई। पर गीले कपड़ों में ही दूसरे गांव जा निकली। वहां पहुंच कर जब उसने मास्टर-दा सूर्यसेन की गिरफ्तारी का समाचार सुना तो उसे बहुत दुख हुआ। कुछ निराशा भी हुई कि शायद अब उसका बचना मुश्किल है। पर डरना, हिम्मत हारना उसने सीखा ही न था।

सूर्यसेन के बाद अब पुलिस को कल्पना की तलाश थी और कल्पना थी कि यहां से वहां भाग-छिप कर पूरे पुलिस विभाग को नचा रही थी। कई बार वह गोलियों की बौछार में भी तीर-सी निकल भागी थी। परन्तु एक दिन उसकी गिरफ्तारी का समय भी आ पहुंचा। मई 1933 में अपने एक साथी के साथ कल्पना गांव के जिस मकान में ठहरी थी, सुराग मिलने पर उसे पुलिस ने घेर लिया।

सुबह पौ फटते ही क्रांतिकारियों के साथ पुलिस की जमकर लड़ाई शुरू हो गई। दोनों ओर से खूब गोलियां चलीं। कल्पना का वह साथी उसके सामने ही धराशायी हो गया। एक छर्रा कल्पना के हाथ में भी आकर लगा। अनुमान लगाइए, चारों ओर से घिरी इस फूल सी किशोरी की उस समय क्या दशा हुई होगी! फिर भी उसके सधे, दृढ़ व्यक्तित्व ने पूरे दो घंटे तक बहादुरी से मुकाबला किया। आखिर उसे हथियार डाल देने पड़े। गिरफ्तार करके रात भर उसे थाने में रखा गया।

सूर्यसेन, तारकेश्वर, कल्पना आदि पर चटगांव-शस्त्रागार कांड के सम्बन्ध में मुकदमा चला। 12 फरवरी, 1934 को सूर्यसेन और तारकेश्वर दस्तीदार को फांसी की सजा मिली और कल्पना को उम्र-कैद की। अपने मास्टर दा को फांसी के लिए जाते देख यह बहादुर लड़की पहली बार फूट-फूट कर रोई। मास्टर दा के लिए तो दुख था ही, पर उसका रोना इस कमजोरी के कारण नहीं था, इसलिए था कि उसे भी फांसी की सजा क्यों नहीं दी गई? उसके मुंह से बार-बार निकला, "पुरुष साथी शहीद हो जाएं और मैं उम्र भर जेल में सड़ूं? औरत होने के नाते दण्ड में भी यह भेदभाव?" सचमुच फांसी चढना सरल है, जेल

में आजीवन पल-पल गिन कर काटना बहुत बड़ी यातना।

पर 19 वर्षीय कल्पना इससे भी हताश नहीं हुई। जेल में उसका संघर्ष जारी रहा, अन्त में सफलता भी मिली। मिदनापुर जेल में वह गांधीजी से भी मिली थी। अपनी पुस्तक 'चटगांव शस्त्रागार आक्रमण के संस्मरण' में उसने लिखा, जेल में गांधीजी मुझसे मिलने आए। वे मुझसे मेरी आतंकवादी गतिविधियों के कारण बहुत नाराज थे। पर उन्होंने कहा, "मैं फिर भी तुम्हारी रिहाई के बारे में प्रयत्न करूंगा।"

इस तरह, 1937 में जब प्रांतीय स्व-शासन लागू हुआ तो गांधीजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सी.एफ. एंड्रयूज के विशेष प्रयत्नों से 1 मई, 1939 को कल्पना रिहा हो गई।

बाहर आकर कल्पना ने एम.ए. में प्रवेश लिया और कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य बनकर 'ट्रेड यूनियन वर्कर' के रूप में कार्य करने लगी पर द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने से अधिकारी फिर उस पर निगाह रखने लगे थे। संदेह होने पर उसे 24 घण्टे के अन्दर कलकत्ता छोड़ने का आदेश मिला। अब वह अपने घर चटगांव आकर बाकायदा क्रांति-कार्यवाहियों में भाग लेने लगी। दस्तावेज, कागजात इधर से उधर भेजना, क्रांतिकारियों के शरण-स्थलों का प्रबंध करना, पर्चे बांटना आदि। इसलिए 1941 में उस पर फिर पाबंदियां लगा दी गईं, जिससे 1942 के आंदोलन में सीधे भाग लेना उसके लिए कठिन हो गया।

कम्युनिस्ट पार्टी में भाग लेते समय ही कल्पना की भेंट प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता श्री पी.सी. जोशी से हुई और 4 अगस्त, 1943 को वे विवाह-बंधन में बंध गए।

भारत-विभाजन के बाद वह कलकत्ता आ गयी। कुछ समय कलकत्ता में अध्यापन- कार्य करने के बाद कल्पनाजी अब दिल्ली में 'इंडो-सोवियत कल्चरल सोसायटी' में कार्यरत हैं।

'महिला वर्ष' 1975 में राजधानी में उनका सम्मान किया गया था और भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता-सेनानियों को मिलने वाली उनकी पेंशन-राशि भी बढ़ा कर दुगनी कर दी गई थी। 24 सितम्बर, 1979 को पूना में उन्हें 'वीर महिला' की उपाधि से सम्मानित व पुरस्कृत किया गया।

कालेज-समारोह में गवर्नर पर गोली चलाने वाली
वीना दास

6 फरवरी, 1932 का एक ऐतिहासिक दिन। वीना दास उस दिन अपने कालेज के दीक्षान्त समारोह में अपनी बी.ए. की डिग्री लेने वाली थी। गवर्नर स्टैनले जैक्सन अपना दीक्षान्त भाषण दे रहे थे। वीना धीरे से अपनी सीट से उठी और फिर तेजी से मुख्य अतिथि स्टैनले के सामने जाकर उसने गोली चला दी। गवर्नर स्टैनले जैक्सन बुरी तरह कांप गए। इसी कारण निशाना जरा सा चूका और वह बाल-बाल बच गये।

समारोह में श्री सुहरावर्दी भी बैठे थे। यह दृश्य देखकर वह तेजी से उस ओर लपके और लड़की को काबू में करने की कोशिश करने लगे। अंग्रेजों से बदले की भावना से भरी, क्रोध से उबलती दुबली-पतली वीना पकड़ी जाने तक धड़ाधड़ गोलियां चलाती रही। लेकिन धर-पकड़ और आत्म-समर्पण के बीच की कशमकश से निशाना इधर-उधर हवा में लगता रहा। उससे न कोई मरा, न गम्भीर रूप से जख्मी हुआ।

रिवाल्वर में आखिरी गोली खत्म होने पर वीना पकड़ ली गई। पुलिस ने उसके अन्य साथियों के भेद उगलवाने के लिए उस पर अमानवीय अत्याचार किए, पर व्यर्थ। अपने दल के संगठन के बारे में पुलिस वीना से एक शब्द भी नहीं उगलवा सकी।

आजादी की लड़ाई के दौरान क्रान्तिकारियों पर चले मुकदमे का एक ऐतिहासिक रिकार्ड कायम हुआ। मुकदमा एक दिन में, एक ही बैठक में निबटा दिया गया। वीना को 9 वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड सुनाया गया।

पर उस अदालत के सामने अपने तीन पृष्ठ लम्बे लिखित बयान में वीना ने जो कुछ कहा, वह भी ऐतिहासिक रिकार्ड है,

"मातृभूमि के प्रति अपने प्रेम से प्रेरित होकर ही मैंने गवर्नर पर गोली चलाई है। विदेशी सरकार के अत्याचारों से कराहते हुए भारत में जीवन क्या जीने योग्य है? इसके बदले अपना बलिदान करके विरोध प्रकट करना क्या अच्छा नहीं है?"

वीना दास का जन्म 24 अगस्त, 1911 को कृष्ण नगर में हुआ। पिता श्री बेनीमाधव दास नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के शिक्षक थे। इतिहास प्रसिद्ध शिक्षक अपने आदर्शवादी और देश-भक्त पिता से ही वीना को 'देशभक्ति' की प्रेरणा मिली और उसके मन में भी देश की आजादी का संकल्प जागा। वीना की बड़ी बहन कल्याणी दास भी एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थीं। वीना एक प्रतिभाशाली, सभ्य और शालीन छात्रा थी। इसलिए कोई सोच भी न सकता था कि यह लड़की इतना बड़ा दुस्साहसी कदम उठा सकती है!

कल्याणी दास के साथ राजनीति में वीना का प्रथम प्रवेश 1928 में हुआ, जबकि 'साइमन कमीशन' का विरोध करने के लिए उसने कुछ लड़कियों को साथ लेकर अपने कालेज-गेट पर धरना दिया। उसी वर्ष कलकत्ता के कांग्रेस-अधिवेशन में वह अपनी बड़ी बहन के साथ स्वयंसेविका दल लेकर गई। उसके बाद वह बाकायदा क्रान्ति-दल की महिला-शाखा में शामिल हो गई।

1930 के 'चटगांव शास्त्रागार काण्ड' के बाद बंगाल में क्रान्तिकारियों की गतिविधियां तेज हो गई थीं। उसी जोश में वीना ने भी यह कर दिखाया था।

उस काण्ड के बाद साहसभरा बयान देकर वीना ने अपने लिए सश्रम कारावास की लम्बी सजा स्वीकार की। उसकी सजा का अधिक समय कुमिल्ला की क्रान्तिकारी शान्ति घोष व सुनीति चौधरी और चटगांव की कल्पना दत्त के साथ मिदनापुर जेल में बीता। 1937 में जब प्रान्तीय कांग्रेस सरकारें बनीं तो नेताओं के प्रयास से अन्य लड़कियों के साथ वीना को भी रिहा कर दिया गया।

रिहाई के बाद वीना दास 'मन्दिरा' नामक पत्रिका में काम करने लगीं। पर अधिक समय तक वह चुप बैठने वाली नहीं थी। इसलिए जैसे ही 1942 का उग्र आन्दोलन शुरू हुआ, वह फिर क्रान्तिकारियों की कार्यवाहियों के साथ जुड़ गईं। जाहिरा तौर पर वह गांव के लोगों के बीच रहकर सेवाकार्य करती रहीं, पर गुप्त रूप से क्रान्तिकारी गतिविधियों में लगी रहीं। इसलिए फिर जेल गईं और 1946 में छूटीं। 1946 में जब कलकत्ता और नोआखली में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए तो वह अपनी अन्य क्रान्तिकारी साथिनों को साथ लेकर शरणार्थियों के राहत-कार्य में जुट गईं। 1946 से 1951 के बीच प्रांतीय विधान सभा की सदस्य भी रहीं। तब उनका अधिकतर कार्य मजदूर नेता के रूप में ही था।

देश को गुलामी के बन्धन से मुक्त करने के बाद ही वीना दास विवाह करके निजी बन्धन में बंधीं। आज भी वीना भौतिक रूप में हमारे बीच हैं और समाज-कार्यों में व्यस्त हैं।

जिला मजिस्ट्रेट स्टीवेंस पर गोली चलाने वाली दो स्कूली छात्राएं

शांति घोष और सुनीति चौधरी

चटगांव शस्त्रागार कांड व उससे संबंधित हत्याओं के बाद सारा पूर्वी बंगाल क्रांति की लपटों से घिर गया था। अंग्रेज सरकार बौखला उठी थी। दमन-चक्र तेज हो गया था। एक-एक आदमी पर नजर रखी जाने लगी थी।

तभी 24 दिसम्बर की एक रोमांचकारी घटना ने चारों ओर तहलका मचा दिया। पहले से चौकन्नी फिरंगी सरकार को झिंझोड़ कर पूरे देश का ध्यान खींचने वाली इस घटना की नायिकाएं थीं: पन्द्रह और साढ़े पन्द्रह साल की दो स्कूली लड़कियां, शांति घोष और सुनीति चौधरी।

उन दिनों सारे पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) में हर नागरिक की शिनाख्त के लिए एक परिचय-पत्र दिया जाता था, जिसमें उसके फोटो के साथ उसका नाम, पता आदि लिखा रहता था। यह सारी सावधानी इसलिए बरती जा रही थी कि फरार क्रांतिकारी इधर उधर जाते समय पकड़े जा सकें। एक गांव से दूसरे गांव में प्रवेश के समय भी हर व्यक्ति से उसका परिचय-पत्र मांगा जा सकता था और न दिखाने पर उसे गोली से उड़ाया जा सकता था। इस सख्ती के कारण क्रांतिकारियों का आवागमन बड़ा कठिन हो गया था। नगरों और गांवों की हर

स्कूली या सार्वजनिक इमारत में अंग्रेजी फौज टिकी थी।

फिर भी त्रिपुरा जिले के मजिस्ट्रेट स्टीवेन्स को गोली से उड़ा देने के धमकी भरे पत्र मिल चुके थे। जिला हेडक्वार्टर कुमिल्ला शहर में था, जहां डबल कांटेदार तारों से घिरे बंगले में स्टीवेन्स एक कैदी की तरह सख्त पहरे में रह रहा था। डर के मारे स्टीवेन्स उस सुरक्षित बंगले से बाहर नहीं निकलता था। सरकारी कर्मचारियों के अलावा, कोई भी आदमी बिना तलाशी दिए भीतर आ-जा नहीं सकता था। नौकरों पर भी कड़ी निगरानी रखी जा रही थी।

इतनी सावधानी, इतनी सतर्कता और इतना कड़ा पहरा! लेकिन देश-भक्ति के उबाल ने उस कड़े पहरे की भी परवाह नहीं की। दो छोटी-छोटी बंगाली लड़कियां बंगले में पहुंचीं। फाटक पर संतरी ने रोका, "क्या चाहती हो"? उत्तर मिला, "लड़कियों की तीन मील की एक तैराकी-प्रतियोगिता है। इस सिलसिले में जिला मजिस्ट्रेट के पास दरख्वास्त लेकर आई हैं। उनसे सहायता लेनी हैं।" संतरी ने फिर प्रश्न किया, "सहायता? किस रूप में?" लड़कियों ने कहा, "हम चाहती हैं, उस तिथि और अवधि में तीन मील के उस क्षेत्र में कोई नाव, स्टीमर, मोटर लांच आदि न आए-जाए। यह कहकर एक लड़की ने जेब से प्रार्थना-पत्र निकाल कर संतरी को दिखाया। संतरी ने फोन पर पूछा। भीतर से उत्तर मिला, "स्कूली छात्राएं हैं, नाबालिग हैं, भेज दिया जाए।"

कांटेदार तारों वाली सीमा को लांघ, गलियारा पार कर लड़कियां बंगले में दाखिल हुईं। वहां भी सी.आई.डी. ने रोका। पूछताछ की। फिर संतुष्ट होकर उन्हें बरामदे में लगी कुर्सियों

पर बैठाया। अरजी अंदर भेज दी गई। थोड़ी देर बाद अरजी हाथ में लिए मजिस्ट्रेट बाहर आया, "वेल गर्ल्स, यह काम पुलिस-कप्तान कर देगा। तुम लोग उसके पास चली जाओ।" लड़कियों ने एक-दूसरे की ओर देखा। फिर एक ने आगे बढ़ कर कहा, "ठीक है, हम उनके पास चली जाती हैं। पर लौट कर फिर न आना पड़े, इसलिए कृपया आप इस पंर इतना ही लिख दीजिए, "फारवर्डेड टू सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस। हमारा काम हो जाएगा।"

जिला मजिस्ट्रेट स्टीवेन्स ने "दैट्स आल राइट" कहा। वह मेज पर कागज रखकर कुछ लिखने लगा। **एक क्षण में दोनों लड़कियों की आंखें परस्पर मिलीं, चमकीं, और... फिर धांय-धांय...। पांच सेकेंड के भीतर छिपी पिस्तौलें निकाल कर पांच-पांच गोलियां दाग दी गईं। एक साथ दस गोलियों की आवाज से बंगला गूंज उठा।**

सी.आई.डी. अधिकारी और दूसरे लोग जब तक पहुंचे, स्टीवेंस का काम तमाम हो चुका था। खून से लथपथ उसकी लाश फर्श पर पड़ी थी। दोनों लड़कियां खड़ी-खड़ी अपनी विजय पर मुस्करा रही थीं। अधिकारी आगे बढ़े कि उन्होंने खाली पिस्तौलें फेंक कर नारे लगाए और फिर स्वयं को उनके हवाले कर दिया। भागने की कोई राह थी भी नहीं।

ये छोटी उम्र की स्कूली छात्राएं थीं, कुमारी शांति घोष और कुमारी सुनीति चौधरी।

इस रोमांचकारी घटना ने पूरे बंगाल क्या, देश भर में तहलका मचा दिया था। लड़कियों ने अपना काम कर दिया था। अब उन्हें जीने की कोई इच्छा भी न थी। मरने के लिए वे तैयार

होकर आई थीं। कम उम्र होने के कारण उन्हें फांसी नहीं दी गई। आजन्म कालापानी की सजा पाकर वे जेल चली गईं। फिर अपने जैसी अन्य क्रांतिकारी लड़कियों के साथ ही छूटीं।

शांति घोष का जन्म 22 नवम्बर, 1916 को कलकत्ता में और सुनीति चौधरी का 22 मई, 1917 को कुमिल्ला में हुआ था। दोनों ने साथ-साथ 'दीपाली संघ' में शस्त्र-चालन का प्रशिक्षण लिया था और क्रांतिकारियों का साथ देने की कसमें खाई थीं। फिर साथ मिल कर ही वह काम कर दिखाया, जिसने बंगाल में क्रांति की ज्वाला को और भड़का दिया। इन छोटी लड़कियों का यह असाधारण साहस न जाने कितने भावी क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा बन गया था। तभी तो स्वतंत्रता-संग्राम के क्रांति-इतिहास में उनका नाम अमर है।

लेवंग रेसकोर्स गोली कांड में शामिल

उज्ज्वला मजूमदार

1930 के 'चटगांव शस्त्रागार कांड' के बाद बंगाल में क्रांतिकारी सरगर्मियों के दिन। प्रमुख क्रांतिकारियों की धर-पकड़ और फांसी-गोली वाली दमन-कार्यवाहियों का बदला लिया जाना था। इसके लिए 1934 में कुछ नए क्रांतिकारी युवा-दल सामने आ गए थे। इन्हीं में से एक दल था – 'बंगाल वालंटियर्स।'

इस दल के प्रमुख लड़के-लड़कियों की एक टोली दार्जिलिंग में गवर्नर एंडरसन पर गोली चलाने की तैयारी कर रही थी। पूरी योजना बना ली गई। बस तलाश थी तो एक अवसर की। और वह अवसर भी शीघ्र मिल गया।

8 मई, 1934 के दिन भवानी भट्टाचार्य, रवि बैनर्जी, मनरंजन बैनर्जी और उज्ज्वला मजूमदार – ये चारों साथी खूब व्यस्त थे। उज्ज्वला मजूमदार 'बंगाल वालंटियर्स' के इस 'एक्शन-ग्रुप' की एक सदस्या थी। इस योजना में उसने आगे बढ़कर भाग लिया था।

क्या होने वाला था उस दिन?

उस दिन गवर्नर एंडरसन लेवंग रेसकोर्स के मैदान में आने वाले थे। इन चारों क्रांतिकारियों को यह अवसर बहुत उपयुक्त

लगा। चारों साथी अपनी भरी पिस्तौलें लेकर निकल पड़े। भवानी भट्टाचार्य और रवि बैनर्जी को ठिकाने पर तैनात कर उज्ज्वला और मनरंजन बैनर्जी पिछली रक्षा-पंक्ति में खड़े हो गए। उज्ज्वला ने यूरोपीय लेडी जैसी चटख रंग की रंगीन प्रिंट की साड़ी पहन रखी थी और आंखों पर 'हाई पावर' का काला चश्मा चढ़ा रखा था।

इधर उज्ज्वला ने संकेत दिया, उधर गवर्नर एंडरसन पर गोली चल गयी। भवानी और रवि वहीं पकड़ लिये गये। गोली की आवाज सुनते ही मनरंजन और उज्ज्वला वहां से खिसक लिए। टिकट पहले ही ले रखे थे। उन्होंने वेशभूषा बदली और सहज भाव से ट्रेन पर सवार हो गए। पीछे से इन दोनों के नाम भी वारंट निकल चुके थे। ट्रंक काल कर हुलिया देकर एक लड़के और एक लड़की को पकड़ने के लिए पुलिस को आदेश दे दिया गया था। **सिलीगुड़ी पर पुलिस ने ट्रेन को घेर लिया। पर मनरंजन और उज्ज्वला ट्रेन के अलग-अलग डिब्बों में थे और उज्ज्वला की साड़ी बदल चुकी थी, चश्मा उतर चुका था। इस तरह दोनों बचकर सुरक्षित कलकत्ता पहुंच गए।**

पर कब तक?

18 मई, 1934 को ही 'युगान्तर दल' की सदस्या शोभा रानी दत्त के घर पर छापा मार कर पुलिस ने शोभा रानी और उज्ज्वला दोनों को गिरफ्तार कर लिया। सभी साथी जेल में आ गए। विशेष अदालत में मुकदमा चला कर भवानी, रवि, मनरंजन को फांसी की सजा सुनाई गई, उज्ज्वला को बीस साल के सश्रम कारावास की। अपील के बाद उनकी सजाएं आजीवन कारावास में बदलीं, उज्ज्वला की 14 साल की जेल में। बाद में

गांधीजी की कोशिश से उज्ज्वला मजूमदार मिदनापुर सैंट्रल जेल से 1937 में रिहा हो गई।

लेकिन वह चुप कहां बैठने वाली थी? 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में फिर कूदी और 'भारत रक्षा कानून' में फिर गिरफ्तार होकर प्रेसीडेंसी जेल भेज दी गई। वहां से फिर 1946 में ही रिहा हुई।

उज्ज्वला का जन्म 21 नवम्बर, 1914 को ढाका में हुआ था। पिता सुरेशचंद्र मजूमदार समृद्ध जमींदार परिवार के थे, फिर भी क्रांतिकारियों के समर्थक थे। उन्हें हर तरह की सहायता पहुंचाते थे। चौदह साल की उज्ज्वला को कलकत्ता से ढाका अस्त्र-शस्त्र लाने का काम पहली बार पिता ने ही सौंपा था। गांव में रहकर क्रांतिकारियों के काम में सहयोग देने के कारण उसकी शिक्षा भी देर से हुई। बीस साल की उम्र में मैट्रिक पास कर फिर वह क्रांतिकारी दल से सीधे जुड़ गई। बी.ए. की परीक्षा उसने जेल से ही पास की। बी.टी. की जेल से छूटने के बाद।

1946 में जेल से मुक्ति के बाद भी उज्ज्वला जी खाली नहीं बैठीं। दंगा-पीड़ितों के राहत-कार्य में लग गईं। फिर 1947 में समाजवादी पार्टी में कार्य करने लगीं। और फिर 1948 में क्रांतिकारी साहित्यकार भूपेन्द्र किशोर राय से विवाह कर घर-गृहस्थी और समाज-कार्य दोनों में व्यस्त हो गईं।

छद्म रूप में क्रांतिकारियों का साथ देने वाली

सुहासिनी गांगुली

फ्रान्सीसी उपनिवेश चन्द्रनगर बंगाल के क्रांतिकारियों के छुपने की उन दिनों एक सुरक्षित जगह बन गई थी। 1930 के 'चटगांव शस्त्रागार कांड' के बाद बहुत से क्रांतिकारी ब्रिटिश पुलिस की धर-पकड़ से बचने के लिए चन्द्रनगर चले गए थे। सुहासिनी गांगुली इन्हीं क्रांतिकारियों को सुरक्षा देने के लिए कलकत्ता से वहां गई थीं।

सुहासिनी गांगुली का काम एक खास किस्म का कठिन काम था। पहले वह कलकत्ता में गूंगे-बहरे बच्चों के एक स्कूल में कार्य कर रही थीं। क्रांतिकारियों के साथ रहने के लिए उन्होंने यह नौकरी छोड़ कर चन्द्रनगर में एक स्कूल में अध्यापन-कार्य ले लिया। शाम से सुबह तक वह क्रांतिकारियों की सहायक उनकी प्रिय सुहासिनी दीदी थीं। दिन भर एक सामान्य अध्यापिका के रूप में काम पर जाती थीं और घर में शशिधर आचार्य की छद्म पत्नी बन कर रहती थीं। इसलिए कि किसी को संदेह न हो, यह घर एक सामान्य गृहस्थ का घर लगे और वह क्रांतिकारियों को सुरक्षा दे सकें। गणेश घोष, लोकनाथ बल, जीवन घोषाल, हेमन्त तरफदार आदि क्रांतिकारी बारी-बारी से यहीं आकर ठहरते थे।

इतना सब करने पर भी अधिकारियों को संदेह हो गया।

उस घर पर चौबीसों घंटे निगाह रखी जाने लगी। फिर 1 सितम्बर, 1930 को उस मकान पर घेरा डाल दिया गया। आमने-सामने की मुठभेड़ में जीवन घोषाल, गोली से मारा गया। अनन्त सिह पहले ही पुलिस को आत्म समर्पण कर चुका था। शेष साथी और सुहासिनी गांगुली अपने तथाकथित पति श्री शशिधर आचार्य के साथ गिरफ्तार हो गईं।

सुहासिनी दीदी को पहली सजा मिली, सर चार्ल्स का एक थप्पड़! फिर वह भी इन्दुमति सिह के पास हिजली जेल में भेज दी गईं। आठ साल की लम्बी अवधि के बाद 1938 में रिहा हुईं। 1942 के आन्दोलन में भाग लेकर फिर जेल गईं और फिर 1945 में ही छूटीं।

सुहासिनी का जन्म खुलना में हुआ। पैत्रिक घर ढाका, जिला विक्रमपुर के बाघिया गांव में था। पिता अविनाश चन्द्र गांगुली और माता सरलासुन्दरी देवी ने अपनी इस लड़की को हर तरह से योग्य बनाने के लिये अच्छी शिक्षा दिलाई। 1924 में ढाका ईडन हाईस्कूल से मैट्रिक पास करके ईडन कालेज से स्नातक बनीं। फिर एक तैराकी स्कूल में कल्याणी दास और कमला दासगुप्ता के सम्पर्क में आईं तो वह भी क्रांतिकारी दल का साथ देने के लिए प्रशिक्षण लेने लगीं। 1929 में विप्लवी दल के एक नेता रसिक लाल दास से परिचय होने के बाद तो वह पूरी तरह से दल में सक्रिय हो गईं। हेमन्त तरफदार ने भी उन्हें इस ओर बढ़ाया।

उस घटना के बाद उन्हें लम्बी सजा काटनी पड़ी। रिहाई के बाद भी उन्होंने शादी नहीं की। हेमन्त तरफदार तब धनबाद के एक आश्रम में संन्यासी भेष में रह रहे थे। सुहासिनी

देवी भी उसी आश्रम में पहुंच गईं और आश्रम की ममतामयी सुहासिनी दीदी बनकर वहीं रहने लगीं। आश्रमवासियों पर भरपूर स्नेह लुटातीं और उनकी सेवा में मग्न रहतीं। बिना किसी कुंठा के, बिना किसी आक्रोश के। उन्होंने देश के लिए कष्ट झेला था, किसी पर कोई अहसान नहीं किया था। देश की आजादी उनके जीवन का सब से बड़ा सपना था।

जेल की यातनाओं से मानसिक संतुलन खो देने वाली

शोभारानी दत्त

दार्जिलिंग के रेसकोर्स मैदान में गवर्नर एन्डरसन पर गोली-कांड के बाद उज्ज्वला मजूमदार को पुलिस ने शोभारानी दत्त के घर से खोज निकाला था। और उज्ज्वला के साथ शोभारानी दत्त को भी गिरफ्तार कर लिया गया था। उस गोली-कांड की एक हिस्सेदार उज्ज्वला मजूमदार के बारे में तो लोग काफी कुछ जानते हैं, पर शोभारानी दत्त के बारे में तथ्य अभी तक बहुत कम प्रकाश में आए हैं।

शोभारानी दत्त की कहानी बड़ी मार्मिक है। उन्होंने कुल मिलाकर पांच साल की जेल तो काटी ही थी, जेल की यातनाओं के कारण अपना मानसिक संतुलन भी खो बैठी थीं।

शोभारानी दत्त का जन्म जनवरी 1906 में कलकत्ता में हुआ था। खुलना निवासी उनके पिता श्री जतीन्द्रनाथ दत्त एक जाने-माने कांग्रेसी थे। माता लावण्यप्रभा दत्त भी 1920-22 के बहिष्कार-आन्दोलन में वासन्ती देवी के साथ सक्रिय थीं। 1940 के अन्त में वह 'बंगाल प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी' की सभानेत्री भी बनीं। इस तरह देश-प्रेम के संस्कार उन्हें घर से ही विरासत में मिले।

16 साल की उम्र में उसने 'ब्रहम गर्ल्स स्कूल' से ट्रेनिंग ली। फिर वह विप्लवी वीर राजा महेन्द्र प्रताप के प्रसिद्ध प्रेम-महाविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वृन्दावन चली गई। लाला लाजपतराय के प्रभाव से खिंच कर वहां से पंजाब चली आई। कुछ समय लाला लाजपतराय के साथ काम किया। 1930 में कलकत्ता में उसका परिचय विप्लवी नेता हरिकुमार चक्रवर्ती के साथ हुआ जिससे उसका झुकाव क्रांतिकारियों की ओर बढ़ा उसी वर्ष 1930 में मां के साथ मिलकर उसने 'आनन्द मठ' प्रतिष्ठान स्थापित किया। 1930 में ही 'नारी सत्याग्रह समिति' के माध्यम से 'नमक सत्याग्रह' में भी सक्रिय हुई। जुलूसों में भाग लेना, विदेशी वस्तुओं व शराब की दुकानों पर धरने देना जैसे आन्दोलनों में भी भाग लिया।

उसी वर्ष डलहौजी स्कवेअर-कांड' में पुलिस कमिश्नर पर आक्रमण के बाद फरार दिनेश मजूमदार, अनुज सेन, मनरंजन राय को शोभारानी दत्त ने ही अपने घर में आश्रय दिया था। फिर उन्हें अपनी गाड़ी में सुरक्षित निकाल कर पटुरिया गांव पहुंचा आई थी। 28 अगस्त को मनरंजन राय उसी गांव से गिरफ्तार हुए। 29 अगस्त को शोभारानी दत्त ने लक्ष्मीमणि देवी के साथ बेहाला पुलिस-थाने पर जाकर प्रदर्शन किया तो लौटते समय इसी बम-कांड के अभियोग में दोनों गिरफ्तार कर ली गईं, किन्तु पुलिस को कोई सबूत नहीं मिले तो कुछ दिनों बाद रिहा कर दी गईं। 8 मई, 1934 के लेवंग-कांड के बाद उसने फरार उज्ज्वला मजूमदार को फिर अपने घर में आश्रय दिया। दस दिन बाद 18 मई को पुलिस ने अचानक उस घर पर छापा मारा और दोनों सहेलियां गिरफ्तार कर ली गईं।

जेल में भी शोभारानी दत्त को नजरबन्द करके रखा गया था। अपने अन्य साथियों का अता-पता न बताने पर उसे काफी यातनायें भी दी गई थीं। तभी शोभारानी दत्त अपना मानसिक संतुलन खो बैठी थी। जेल से ही सीधे उसे रांची मानसिक चिकित्सालय भेज दिया गया। एक साल बाद ठीक होने पर भी रिहा नहीं किया गया, ठीक होते ही वापस प्रेसीडेन्सी जेल पहुंचा दिया गया। अन्ततः 1939 में जाकर उसकी रिहाई हुई।

रिहाई के बाद भी शोभारानी जी का स्वास्थ्य लगभग खराब ही चलता रहा। बहुत लम्बी बीमारी के बाद 9 नवम्बर, 1950 में उनका देहावसान हो गया।

वह एक बहुत तेजस्विनी, साहसी और ममतामयी नारी थीं। दीन-दुखियों की सहायता से लेकर क्रांतिकारियों की सहायता तक उन्होंने अथक श्रम किया। घर से समृद्ध होने के कारण उनका घर तो क्रांतिकारियों का आश्रय-स्थल था ही, बाहर से भी अर्थ-संग्रह करके वह सभी को मदद पहुंचाती रहती थीं। इसीलिये उनकी बीमारी में प्रायः सभी बड़े नेता उन्हें देखने आते रहे। राजा महेन्द्र प्रताप का आशीर्वाद तो अन्त तक उनके साथ था।

मानीतल्ला-केस में लम्बी सजा भुगतने वाली

विमल प्रतिभा देवी

मानीतल्ला डकैती-केस में क्रांतिकारियों की सहायता करने के कारण लगभग सात साल की लम्बी सजा भुगतना।

रिहाई के बाद राजद्रोहमूलक करार दिये जाने वाले पैम्फलेट रखने पर फिर दो साल की जेल काटना।

'नारी कर्म मन्दिर', 'नारी सत्याग्रह समिति' में सक्रिय योगदान देना और 'भारत नौजवान सभा' की बंगला शाखा की अध्यक्ष के नाते बंगाल से बाहर के क्रांतिकारियों से सम्पर्क रखना।

विमल प्रतिभा देवी का जन्म दिसम्बर 1901 में कटक में हुआ था। नदिया जिले के काचरापाड़ा गांव के श्री सुरेन्द्र नाथ मुखर्जी और इन्दुमति देवी की यह लड़की एक धनी सम्भ्रान्त घर की थीं। उनका विवाह भी एक विख्यात धनी परिवार के डा. चारु चन्द्र से हुआ था। बचपन में तो उन्हें स्वदेशी परिवेश मिला, क्योंकि पिता 'प्रर्वतक संघ' के कर्मी थे पर विवाह के बाद उनके आगे रूढ़िबद्ध परिवार की प्रचंड बाधा थी। फिर भी 1918 से'स्वेदशी'संस्कारों से प्रेरित विमल् प्रतिभा देवी घर में बिना बताये असहयोग आन्दोलन में भाग लेने लगीं। 1921 में उन्होंने उर्मिला देवी के 'नारी कर्म मन्दिर' में योगदान दिया। 1927 में 'भारत नौजवान सभा' की बंगाल शाखा की अध्यक्ष

बन कर वहां के क्रांतिकारियों से भी जुड़ गईं। पर 1928 तक उनके सभी कार्य गोपनीय ढंग से चले।

1928 में सामने आकर उन्होंने कलकत्ता-कांग्रेस में खुला योगदान दिया। सुभाष चन्द्र बोस के साथ भी काम किया। 1920 में 'नमक सत्याग्रह' के समय उन्होंने शान्ति कबीर के साथ मिलकर 'नारी सत्याग्रह समिति' गठित की और समिति की सह-संयोजिका के नाते धारा 144 भंग कर गैरकानूनी जुलूसों में भाग लिया। तभी 27 जून को कालेज स्ट्रीट से गिरफ्तार होकर छः महीने के लिये जेल भेज दी गईं।

पर उनका मुख्य कार्य था, विप्लवी दल की छिपे तौर पर हर सम्भव सहायता करना। 'चटगांव शस्त्रागार कांड' के बन्दी क्रांतिकारियों के मुकदमे में मदद करने के लिए अर्थ-संग्रह करने से लेकर फरार क्रांतिकारियों को अपने घर या सहेलियों के घर में आश्रय देने तक। जलालाबाद के शहीदों के चित्रों की बिक्री करके उन्होंने गुप्त ढंग से धन इकट्ठा किया। फिर 2 अक्तूबर, 1931 को जब मानीतल्ला के डकैती-केस में धीरेन चौधरी, काली पद राय, नरहरि सेन आदि की गिरफ्तारियां हुईं तो उनकी मददगार के रूप में विमल प्रतिभा देवी भी पकड़ ली गईं। **बिना मुकदमा चलाये उन्हें हिजली व प्रेसीडेन्सी जेलों में साढ़े छः साल से ऊपर रखा गया।** 1938 में जाकर वह रिहा हुईं।

रिहाई के बाद उन्हें 'निखिल भारत बन्दी-मुक्ति आन्दोलन कमेटी' की सहसंयोजिका चुन लिया गया। 1940 में त्रिपुरि कांग्रेस-अधिवेशन के समय उन्होंने कांग्रेस छोड़ने का निश्चय किया और उसी वर्ष कांग्रेस से अलग हो गईं। **27 जनवरी,**

1941 को उन्हें फिर राजद्रोहमूलक पैम्फलेट रखने पर गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। प्रेसीडेन्सी जेल से दुबारा वह 27 सितम्बर, 1943 को रिहा हुई। इसके बाद उनका सारा कार्य श्रमिक आन्दोलन की कार्यकर्त्री के रूप में ही है।

आजादी के लिए भारी कीमत चुकाने वाली

चारुशीला देवी

चारुशीला देवी मुख्यतः 'स्वदेशी आन्दोलन' के साथ जुड़ी थीं, पर क्रांतिकारियों के साथ सहानुभूति रखने के कारण उन्हें बहुत कष्ट झेलना पड़ा।

चारुशीला देवी का जन्म 1883 में मिदनापुर में हुआ। 1905 में, जब बंगाल में 'बंग-भंग आन्दोलन' के साथ 'स्वदेशी आन्दोलन' भी जोरों पर था, तब चारुशीला देवी ने ही खुदीराम बोस को खून का टीका लगा कर उसे स्वदेशी का मन्त्र दिया था। चारुशीला देवी खुदीराम बोस की मुंहबोली बहन थीं। बहन ने भाई को स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की ओर मोड़ा था और भाई ने बहन को स्वदेशी आन्दोलन चलाने के साथ क्रान्तिकारी-कार्यों में भी सहायता करने के लिए प्रेरित किया था। **खुदीराम बोस से सम्बन्ध के कारण ही 1908 में 'मुजफ्फरपुर बम-कांड' के सिलसिले में पुलिस को चारुशीला देवी की भी खोज थी। तभी वह भूमिगत हो गईं और पुलिस के हाथ नहीं आईं।**

1921 के आन्दोलन में उन्होंने 'महिला समिति' का गठन किया और युवतियों को आन्दोलन के लिए प्रशिक्षित करने लगीं। 1930 के नमक सत्याग्रह में भी उन्होंने भाग लिया। पर

अहिंसक सत्याग्रहियों की तरह सीधे गिरफ्तार नहीं हुईं। वारन्ट निकलने पर फिर भूमिगत हो गईं।

भूमिगत रहते हुए भी उन्होंने श्रमिक संघ की मीटिंग बुलाई और 'असहयोग आन्दोलन' के लिए चन्दा इकट्ठा करने लगीं। पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने के लिए घटना-स्थल पर पहुंच गई। पर उत्तेजित श्रमिकों ने उनके चारों ओर घेरा डाल कर उन्हें गिरफ्तारी से बचा लिया। बिफरी भीड़ देख कर पुलिस खाली हाथ लौट गई। लेकिन 7 अगस्त को फिर एक सार्वजनिक स्थल पर प्रगट होने पर चारुशीला देवी गिरफ्तार कर ली गईं। उन्हें छः महीने की सजा देकर जेल भेज दिया गया। इसके साथ ही पीछे उनके घर को भी सीलबन्द कर दिया गया। छूटने पर 1931 में वह फिर सक्रिय हुईं और गिरफ्तार होकर एक महीना राजबन्दी के रूप में जेल में रहीं। 1932 में फिर भाग लेने पर उन्हें डेढ़ साल की सजा दी गई।

लेकिन 1933 में जब मिदनापुर का मजिस्ट्रेट मारा गया, तो इस केस में शामिल होने के सन्देह में चारुशीला देवी की सारी सम्पत्ति नीलाम कर दी गई थी और इस बार उन्हें आठ साल की लंबी जेल-सजा सुना दी गई थी। पर कांग्रेसी नेताओं के प्रयत्न से अन्य क्रान्तिकारी महिलाओं के साथ उन्हें भी 1938 में रिहा कर दिया गया।

इस तरह 'स्वदेशी आन्दोलन', 'असहयोग आन्दोलन' और 'क्रान्तिकारी आंदोलन', इन सभी गतिविधियों में चारुशीला देवी ने आगे बढ़ कर भाग लिया था। इसके लिए कई बार जेल जाने और लंबे समय तक जेलों के कष्ट सहने के अलावा, उन्होंने आर्थिक दृष्टि से भी इसकी खासी कीमत चुकाई। **जब्त**

करके नीलाम की गई उनकी सम्पत्ति की कीमत उस जमाने में भी सत्तर हजार रुपया थी। सब कुछ लुटा कर रिहाई के बाद उन्हें आर्थिक कष्ट भी अवश्य झेलना पड़ा होगा। समृद्ध से सर्वहारा बन कर भारी कष्ट उठाने वाली ऐसी स्वतंत्रता-सेनानी को याद कर हर भारतवासी का माथा ऊंचा होगा।

वीना दास की बड़ी बहन, प्रसिद्ध क्रांतिकारी

कल्याणी दास

कल्याणी दास 'युगान्तर दल' की एक प्रसिद्ध सदस्या थीं। अपनी छोटी बहन वीना दास से उनका काम अधिक है, अधिक लम्बे समय तक है। पर कल्याणी दास को इतनी प्रसिद्धि नहीं मिली, जितनी कि वीना दास एक 'एक्शन' के एक झटके में ही ले गई।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के शिक्षक श्री बेनीमाधव दास और सरला दास की इस बड़ी पुत्री का जन्म 28 मई, 1907 को हुआ। दोनों बहनों के जीवन पर माता-पिता और बड़े मामा विनयेन्द्र नाथ सेन का प्रभाव था। देशभक्ति की प्रेरणा उन्हें पिता से, समाजसेवा की माता से और क्रान्ति की मामा से मिली। मां मामा के 'नीति विद्यालय' का संचालन करती थीं और महिला-संगठनों का कार्य भी देखती थीं। कल्याणी दास ने मां के इन दोनों कार्यों में हाथ बंटाया।

1928 में बी.ए. करने के बाद कल्याणी दास ने एम.ए. में दाखिला लिया और **'छात्रसंघ' की संयोजिका** बन गईं। 'युगान्तर दल' के विप्लवी नेता दिनेश मजूमदार आकर छात्र-संघ के लड़के-लड़कियों को प्रशिक्षण देते थे। कल्याणी दास एक ओर मां के साथ 1930-32 के 'अहसयोग आंदोलन' में 'नारी सत्याग्रह समिति' की ओर से विदेशी वस्त-बहिष्कार के

लिए धरनों-जुलूसों में भाग ले रही थीं, दूसरी ओर क्रान्तिकारियों को गुप्त सहायता भी पहुंचाती रहती थीं। इसलिए 'डलहौजी स्क्वेअर बम-कांड' में पकड़े गए क्रांतिकारियों की सहानुभूति में कल्याणी दास ने अपनी सहेलियों को संगठित करके अपने कालेज में हड़ताल करा दी।

बेथुने कालेज-गेट पर धरना देते हुए यह पूरी टोली पुलिस द्वारा गिरफ्तार करके शहर से बहुत दूर एक निर्जन स्थान पर छोड़ दी गई। वहां से सभी को पैदल चलकर आना पड़ा लेकिन ये फिर कालेज-गेट पर बैठ गईं। तब शेष सारी छात्राएं भी 'वन्देमातरम्' का जयघोष करती बाहर निकल आईं। अगली बार इस टोली ने प्रेसीडेन्सी कालेज के हड़ताली छात्रों का साथ दिया और वहां पुलिस लाठी-चार्ज की शिकार हुईं।

1932 में हाजरा पार्क में गैरकानूनी सभा का आयोजन करते हुए कल्याणी दास को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें आठ महीने के सश्रम-कारावास की सजा दी गई। 1932 के अन्त में छूटीं और फिर क्रांतिकारियों की सहायता-कार्यों में जुट गईं। इधर 'डलहौजी स्क्वेअर बम-कांड' में आजीवन कारावास की सजा पाए दिनेश मजूमदार मिदनापुर सैन्ट्रल जेल से भाग निकले थे। कल्याणी दास ने उन्हें भी आश्रय दिया और दल के पुनर्गठन में उनकी सहायता की। फरारी जीवन में ये सब लोग फ्रांसीसी बस्ती चन्द्रनगर में रह रहे थे। पर बीच-बीच में आकर छापामार लड़ाइया लड़ते रहते थे। 25 फरवरी, 1933 को क्वींस रोड पर पुलिस कमिश्नर गोली से मारा गया तो सन्देह में फिर अनेक युवक-युवतियों की धर-पकड़ शुरू हो गई।

22 मई, 1933 को कार्नवालिस स्ट्रीट वाले मकान पर पुलिस-मुठभेड़ में दिनेश मजूमदार अपने कुछ साथियों के साथ फिर गिरफ्तार कर लिए गए। इस बार उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई और 9 जून, 1934 की आधी रात फांसी दे दी गई। इस मुकदमे के दौरान धर-पकड़ में शांतिसुधा घोष और प्रभात नलिनी देवी भूमिगत हो गईं। लीला कामले नाम की एक मराठी लड़की को बंगाल से निष्कासित कर दिया गया। कल्याणी दास पुलिस की गिरफ्त में आ गईं। उन पर फरार क्रांतिकारियों की मदद करने के अलावा, 'पुलिस कमिश्नर मर्डर-केस' और 'ग्रिडले बैंक डकैती-केस' में शामिल होने का आरोप लगाया गया। उसके पास से कुछ गोपनीय दस्तावेज भी मिले। 1933 के अन्त में उन्हें लम्बी अवधि की सजा देकर मिदनापुर और हिजली जेलों में रखा गया। 1937 में जब प्रांतीय कांग्रेस-सरकारें बनीं, तो नेताओं के प्रयत्न से अन्य क्रांतिकारी युवतियों के साथ कल्याणी दास को भी 1938 के प्रारंभ में जेल से मुक्ति मिल गई।

रिहाई के बाद कल्याणी दास ने मार्च 1938 में एक विप्लवी निर्मलेन्दु भट्टाचार्य के साथ विवाह कर लिया। अप्रैल में ही महिला राजनीतिक कर्मियों के लिए उन्होंने 'मंदिरा' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया और 'छात्र-संघ' को भी पुनः जीवित किया। 1940 में कल्याणी भट्टाचार्य पति के साथ बम्बई चली गईं तो वहां भी 'सिविल लिबर्टी' आंदोलन के साथ हो लीं। 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय एक जुलूस में भाग लेने पर फिर गिरफ्तार हुईं और तीन महीने के लिए जेल गईं। छूटने पर कलकत्ता वापस आईं और समाज-कल्याण

के क्षेत्र में व्यस्त हो गयीं। बंगाल-दुर्भिक्ष व नोआखली दंगों के समय उनके द्वारा किया गया राहत-कार्य भी उल्लेखनीय है।

'जीवन-अध्ययन' नाम से अपनी आत्मकथा में कल्याणी दास (भट्टाचार्य) ने अपने क्रांतिकारी जीवन के मार्मिक अनुभव लिखे हैं, जिनमें भारत-विभाजन से उपजी उनकी मानसिक पीड़ा भी शामिल है।

क्रांतिकारियों की मदद करने पर 6 साल के लिए दण्डित

इन्दुमती सिंह

सूर्यसेन के साथी अनन्त सिंह ने ब्रिटिश पुलिस से मुठभेड़ के पूर्व ही आत्म-समर्पण कर दिया था। लेकिन अनन्त सिंह की बड़ी बहन इन्दुमती सिंह अन्त तक लड़ती रहीं। यद्यपि उन्होंने लड़ाई में सीधे भाग नहीं लिया था, पर **उन दिनों क्रान्तिकारियों की मदद करना भी घोर अपराध था। इसलिए बिना मुकदमा चलाए ही उन्हें 6 साल के लिए हिजली जेल में रखा गया था।**

इन्दुमती सिंह का जन्म चटगांव में हुआ। पिता श्री गुलाब सिंह बंगाल में आकर बसे राजस्थानी राजपूत थे। इन्दुमती भी कल्पना दत्त, प्रीतिलता आदि अन्य क्रांतिकारी युवतियों के साथ चटगांव के प्रशिक्षण-क्लब की एक सदस्या थीं—मुक्ति-युद्ध में भाग लेने के लिए पूरी तरह प्रशिक्षित, तैयार व उत्सुक। वह आगे बढ़कर 'एक्शन' में शामिल होना चाहती थीं, पर भाई अनन्त सिंह ने उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी।

अनन्त सिंह जब चटगांव शस्त्रागार पर हमला करने वाली टोली में शामिल हुआ तो बहन-भाई के बीच हुई बातचीत का सारांश है :

इन्दुमती सिंह — आप लोग कहां के लिए तैयार हो रहे हैं?

अनन्त सिंह — चटगांव में ब्रिटिश राज्य का अन्त करने के

लिए। हमारी 'रिपब्लिकन आर्मी' आज रात उस शस्त्रागार पर कब्जा करके वहां से 'यूनियन जैक' उतारेगी और अपना तिरंगा फहराएगी।

इन्दुमती सिंह – मैं भी चलूंगी आप लोगों के साथ।

अनन्त सिंह – नहीं दीदी, अभी केवल हमारी कामरेड प्रीतिलता ही हमारे साथ जा रही हैं। अन्य बहनों का नम्बर बाद में आएगा। इन्दुमती सिंह ने काफी बहस की कि मास्टर दा (सूर्यसेन) उनकी शक्ति जानते हैं और वह स्वयं भी लड़ने के लिए पूरी तरह प्रशिक्षित है। पर उस 'एक्शन' के लिए उन्हें अनुमति नहीं मिली। वह मन मसोस कर रह गईं। बाद में जब अनन्त सिंह और अन्य क्रान्तिकारी साथी पकड़ लिए गए तो इन्दुमती सिंह क्रांतिकारियों का मुकदमा लड़ने के लिए फण्ड जुटाने में लग गईं। बंगाल के कोने-कोने में जाकर उन्होंने झोली फैलाई। यहां तक कि कलकत्ता के लाल बाजार के मुख्य पुलिस-थाने पर जाकर पुलिस वालों की लानत-मलामत करके उनसे भी कुछ धन ले ही आईं। इस कार्य के लिए वह बंगाल से बाहर भी घूमीं और काफी धन संग्रह करने में सफल हुईं।

बस यही उनका अपराध था। उन्हें बाहर रखना खतरे से खेलना है– यह समझ कर 15 दिसम्बर, 1931 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। बिना मुकदमा चलाये ही लम्बे 6 वर्षों तक उन्हें जेल में बन्द रखा गया। 1937 में प्रांतीय सरकारें बनने पर अन्य क्रांतिकारी युवतियों के साथ ही 1937 के अन्त में रिहा हुईं।

जेल की इस अवधि का उपयोग इन्दुमती सिंह ने अपनी पढ़ाई में किया। इसके पूर्व वह गुजारे लायक हिन्दी और बंगला

ही जानती थीं। शिक्षा उनकी बहुत कम थी। फिर भी धुन इतनी कि खाना-पीना भी भूलकर हर समय स्त्रियों के बीच राष्ट्रीय चेतना जगाने का काम करती रहती थीं। जेल में लीला राय ने इन्दुमती सिंह को नियमित रूप से पढ़ाया और मैट्रिक की परीक्षा पास कराई।

रिहाई के बाद भी इन्दुमती सिंह चुप नहीं बैठीं। जो क्रांतिकारी साथी रिहा होकर अण्डमान से लौटे थे, उनका स्वागत करने के लिए स्टेशन पर उपस्थित थीं। इसके बाद के उनके कार्य के बारे में अन्य विवरण नहीं मिले।

'टीटागढ़ षड्यन्त्र केस' में गिरफ्तार

पारुल मुखर्जी और उषा मुखर्जी

'अनुशीलन समिति' की सदस्याओं में पारुल मुखर्जी और उषा मुखर्जी के नाम भी उल्लेखनीय हैं। ये दोनों बहनें क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़ी थीं। पूर्वी बंगाल में जगह-जगह घूमकर उन्होंने 'अनुशीलन समिति' की शाखाएं स्थापित की थीं। पुलिस को खबर मिलने पर दोनों कुमिल्ला में भूमिगत हो गई थीं। 1933 में जब दोनों के नाम वारंट निकल गए तो वे इधर-उधर बहुत मारी-मारी फिरीं, फिर भी पुलिस की नजरों से अधिक दिन तक नहीं बच सकी थीं।

1934 में छोटी बहन उषा मुखर्जी गिरफ्तार कर ली गई। उसे तीन साल की सजा मिली। वह 1937 में रिहा हुई। बड़ी बहन पारुल मुखर्जी उस समय उनके हाथ नहीं आई थी। जनवरी 1935 में पारुल मुखर्जी को भी 'टीटागढ़ षड्यन्त्र केस' में गिरफ्तार कर लिया गया।

जिस समय उस घर पर छापा पड़ा, भीतर तीन विप्लवी थे। दो पिछवाड़े से कूद कर भाग गये। **पारुल ने दरवाजा खोलने से पहले जल्दी-जल्दी प्रमाण जलाने शुरू कर दिये। पर इसी बीच दरवाजा तोड़ कर पुलिस भीतर घुस आई और उसने बम-फार्मूले सहित सभी अधजले कागजात जब्त कर लिये। पारुल गिरफ्तार हो गई। उसे यातनाएं देकर जब**

साथियों के नाम-पते बताने के लिए मजबूर किया जा रहा था, तो उसने पुलिस को इतनी सख्ती और मुस्तैदी से धमकाया कि थोड़ी यातना के बाद पुलिस ने उसे छोड़ दिया।

'टीटागढ़ षड्यन्त्र केस' में पारुल मुखर्जी को चार साल के लिए कड़ी कैद की सजा मिली।

कलकत्ता में पारुल का जन्म 1915 में और छोटी बहन उषा का 1918 में हुआ था। उनके पिता का नाम गुरुप्रसन्न मुखर्जी और माता का मनोरमा देवी था। 'अनुशीलन दल' के विख्यात विप्लवी नेता अमूल्य मुखर्जी इनके बड़े भाई थे। पितृ-भूमि ढाका के जिला विक्रमपुर में थी और पालन-पोषण कुमिल्ला में हुआ था। दोनों बहनों ने बचपन में अपने बड़े भाई पर पुलिस-अत्याचार देखा था। साथ ही देखा था, भाई द्वारा दृढ़ मनोबल से उसका प्रतिकार। दोनों बहनें ऐसे परिवेश में बड़ी हुईं तो अपने भाई के पथ का अनुगमन करने लगीं।

14 साल की उम्र में पारुल ने कलकत्ता-कांग्रेस में स्वयंसेविका दल की नेत्री के रूप में भाग लिया था। छात्राओं के संगठन के काम में उषा भी बहुत उत्साही कार्यकर्त्री थी। 'अनुशीलन समिति' में ही दोनों ने व्यायाम, तेज भागना, लाठी चलाना, छुरा और पिस्तौल चलाना आदि सीखा। फिर जगह-जगह समिति की शाखाएं खोलने में जुट गईं।

1933 में वारंट निकलने पर भी इनका काम बन्द नहीं हुआ। भूमिगत रहकर रंगपुर, दीनाजपुर, फरीदपुर, बारीसाल, खुलना आदि अनेक जगहों पर भटकते हुए भी संगठन का काम देखती रहीं। टीटागढ़ में क्रांतिकारियों की मदद करने के लिए ही इन्हें लाया गया था। इसलिए कि ये उनके साथ एक परिवार की तरह रहें और किसी को कोई सन्देह न हो।

1936 में प्रेसीडेन्सी जेल में पारुल द्वारा किया गया एक हंगामा भी उल्लेखनीय है : जेल के नियम-अनुसार शाम होते ही सभी कैदियों को तालाबन्द कर दिया जाता था। एक शाम पारुल मुखर्जी आंगन में टहल रही थी। तालाबन्दी का समय होने वाला था। वार्डन समय से पूर्व ड्यूटी खत्म करके घर जाने वाली थी। उसने पारुल को भीतर जाने के लिए कहा। पारुल ने इतनी जल्दी भीतर बन्द होने से इन्कार कर दिया। **उसके साथ जोर-जबर्दस्ती की गई, तो उसने वार्डन को चांटे मारकर जमीन पर गिरा दिया। फिर गरजी, "अभी तो तालाबन्दी में 45 मिनट बाकी हैं। तुम अपनी ड्यूटी जल्दी खत्म करने के लिए हमें जल्दी भीतर बन्द नहीं कर सकतीं।"** मार खाकर वार्डन जोर से चिल्लाई। सभी पहरेदार दौड़े आये। पारुल की जमकर पिटाई की गई। वार्डन को मारने के अपराध में अदालत ने भी उसकी सजा की अवधि कुछ और बढ़ा दी। लेकिन पारुल ने खुशी से यह सजा भी झेल ली। इस बहादुर लड़की ने झुकना सीखा ही न था। 1939 में वह जेल से रिहा हुई।

गुप्त कार्यवाहियों के संदेह में ही सात साल की जेल

प्रतिभा भद्र

प्रतिभा भी कुमिल्ला के फैजनिस्सा गर्ल्स स्कूल की छात्रा थी और 'अनुशीलन दल' की एक सदस्या। दल की गुप्त कार्यवाहियों में संलग्न रहने के कारण केवल संदेह में ही गिरफ्तार कर प्रतिभा भद्र को 1932 से 1936 तक जेल में व इस के बाद 1938 तक घर में नजरबन्द करके रखा गया।

प्रतिभा भद्र का जन्म 16 जुलाई, 1914 को कुमिल्ला में हुआ। पिता का नाम अश्विनी कुमार व माता का मृणालिनी देवी था। 1929 में वह 'अनुशीलन दल' में शामिल हुई और दल के संगठन का काम संभालने लगी। 1932 तक दल की कई छोटी-छोटी शाखाएं खोल कर छात्र-छात्राओं को प्रशिक्षण देती रही। क्रान्तिकारियों के कार्य में सहायता के लिए अर्थ-संग्रह करना, गुप्त दस्तावेज और हथियार इधर से उधर पहुंचाना, फरार क्रान्तिकारियों के लिए आश्रय-स्थल जुटाना आदि सभी क्रान्ति-कार्यों में शामिल थी। साथ ही गांधीजी के 'असहयोग आन्दोलन' के जुलूसों, धरनों में भी भाग लेती थी।

1932 में जब वह कुमिल्ला कालेज की द्वितीय वर्ष की छात्रा थी, तभी गुप्त कार्यवाहियों में भाग लेने के कारण उसे गिरफ्तार कर लिया गया था और सात साल की लम्बी सजा

सुना दी गई थी। खतरनाक अभियुक्त समझ कर 1932 से '36 तक जेल में भी उसे नजरबन्द करके रखा गया था। बीमारी के कारण छोड़ना पड़ा तो 1936-38 के दो साल घर पर भी कड़ी निगरानी में नजरबन्द रखा गया।

1939 में जब सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस से अलग हुए तो प्रतिभा जी उनके साथ उनकी विभाजित कांग्रेस में आ गईं। 1940 में उनका विवाह श्री हरिकुमार रायचौधरी के साथ हुआ। 1942 में प्रतिभा भद्र से प्रतिभा रायचौधरी बन कर वह फिर से सक्रिय हो गईं और गिरफ्तार कर ली गईं। इस बार उन पर कोई सीधा अभियोग नहीं था। पर सुभाष चन्द्र बोस के देश से बाहर निकल जाने पर उनकी साथिन के रूप में ही उन्हें 'भारत रक्षा अधिनियम' के अन्तर्गत 1945 तक नजरबन्द रखा गया।

प्रतिभा भद्र (रायचौधरी) ने जेल में खूब अध्ययन किया और साहित्य-साधना जारी रखते हुए लेखिका बन गईं। 1946 के दंगों के समय 'विप्लवी समाजतंत्री दल' की प्रादेशिक कमेटी की सदस्य निर्वाचित हुईं। इस नाते जेल से छूटे क्रान्तिकारियों के पुनःस्थापन-कार्य में लग गईं। 'आजाद हिन्द फौज' के कैदियों के मुकदमे की पैरवी के लिये धन-संग्रह व अन्य सहायता-कार्य करती रहीं। इसके बाद तो 'अंगना' पत्रिका का सम्पादन करते हुए वह पूरी तरह साहित्यिक क्षेत्र से आ जुड़ीं।

अवैध हथियार रखने पर पांच साल के लिये दण्डित

हेलेना दत्त

'दीपाली संघ' की सदस्या हेलेना दत्त 12 फरवरी, 1933 को गिरफ्तार हुई थी। क्रान्तिकारियों को आश्रय देने के जुर्म के अलावा, उसके पास से बिना लाइसेन्स वाला एक रिवाल्वर भी पकड़ा गया था। इसलिये उसे 5 वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गई थी।

ढाका जिला के कालीगंज निवासी श्री मुकुन्द लाल गुन की पुत्री हेलेना का जन्म 1916 में हुआ था। हेलेना 6 वर्ष की ही थी कि 1922 में उसके पिता की मृत्यु हो गई। माता श्रीमती शैलबाला गुन ने फिर भी उसकी शिक्षा जारी रखी। 1926 में ढाका हाई स्कूल में पढ़ते हुए जब वह होस्टल में रह रही थी, प्रसिद्ध विप्लवी नेता लीला नाग के सम्पर्क में आई। फिर 1928 में बाकायदा 'दीपाली संघ' में शामिल हो, लाठी, छुरा, पिस्तौल चलाने का प्रशिक्षण लेने लगी।

1930 के 'असहयोग आन्दोलन' के समय हेलेना ने लीला नाग के निर्देशन में रह कर 'दीपाली संघ' और 'श्री संघ' दोनों के विप्लवी कार्यों में सहयोग दिया। उसकी सरगर्मियां देख कर होस्टल की अधीक्षक ने उसे सतर्क किया। पर बजाए डरने के, हेलेना ने नमक-कानून भंग करने के लिए होस्टल की छात्राओं को उकसाया और हड़ताल करवा दी। 1931 में मैट्रिक पास

करने के बाद तो वह पूरी तरह इन गतिविधियों से जुड़ गई-गैरकानूनी हथियार और क्रान्ति-साहित्य इधर से उधर पहुंचाना, शहर की दीवारों पर आपत्तिजनक पोस्टर चिपकाना, बहिष्कार-आन्दोलन में भाग लेना आदि।

इन कार्यों में छात्राओं को शामिल करने पर हेलेना को बोर्डिंग से निकाल दिया गया। पर प्रिंसिपल मिस भेरूलकर क्रान्तिकारियों के प्रति छिपी सहानुभूति रखती थीं। उन्होंने उसे अपने घर में आश्रय दे दिया था। इंटरमीडिएट तक पढ़ाई करने के बाद वह कलकत्ता में अपने मामा के घर रहने लगी। उनका घर भी उन दिनों क्रान्तिकारियों का आश्रय-स्थल बना हुआ था। जनवरी 1933 में मामा के घर के सभी लोग गिरफ्तार हो गए और उस मकान पर पुलिस का कब्जा हो गया। पर इसके पूर्व ही खतरा भांप कर मामा ने उसे कलकत्ता से ढाका भेज दिया था। फिर भी 12 फरवरी को हेलेना ढाका से गिरफ्तार कर ली गई। पहले उस पर क्रान्तिकारियों का साथ देने का ही अभियोग था। लेकिन गिरफ्तारी के समय उसके पास से अवैध रिवाल्वर भी बरामद हुआ तो उसे पांच साल के लिए हिजली जेल भेज दिया गया। बी.ए. की परीक्षा हेलेना ने जेल में रहते हुए ही पास की।

दिसम्बर 1937 में मुक्ति के बाद हेलेना जी ने दो वर्ष अवकाश व अध्ययन में बिताए। फिर 1939 में एक क्रान्तिकारी साथी सुकुमार दत्त के साथ विवाह कर 'फारवर्ड ब्लाक' में शामिल हो गईं। 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में फिर सक्रिय होने पर फरवरी 1943 में गिरफ्तार हो गईं। ढाई साल तक ढाका प्रेसीडेन्सी जेल में रहने के बाद बीमार हो

जाने के कारण सजा-अवधि से दो महीने पहले सितम्बर 1945 में रिहा कर दी गईं। लेकिन ये दो महीने भी उन्हें अपने घर में नजरबन्द करके रखा गया था। रिहाई के बाद वह 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' में कार्य करने लगीं।

स्टीवेंस गोलीकांड का एक और नाम

प्रफुल्ल नलिनी ब्रह्म

त्रिपुरा के मजिस्ट्रेट स्टीवेंस पर धोखे से गोली चलाने वाली दो छोटी लड़कियों—शान्ति घोष और सुनीति चौधरी के नाम सभी जानते हैं। पर उनके दल की एक अन्य साथिन को इस कांड में, सीधे भाग न लेने पर भी, कम सजा नहीं मिली थी। यह साथिन थी, प्रफुल्ल नलिनी ब्रह्म, जिसे षड्यंत्र में शामिल होने के संदेह में ही गिरफ्तार करके कई साल तक नजरबंद करके रखा गया था।

प्रफुल्ल नलिनी ब्रह्म का जन्म 22 फरवरी, 1914 को कुमिल्ला में हुआ। श्री रजनीकांत ब्रह्म की यह लड़की भी फैजनिस्सा गर्ल्स हाईस्कूल में शान्ति घोष और सुनीति चौधरी के साथ ही पढ़ती थी। घर में 'स्वदेशी' का वातावरण था। प्रतिबंधित आंदोलन में भाग लेने पर पिता की नौकरी जा चुकी थी। फिर भी पिता कुमिल्ला के 'युगांतर दल' के साथ जुड़े थे। उन्होंने ही अपनी पुत्री प्रफुल्ल नलिनी ब्रह्म को इस ओर प्रेरित किया। आठवीं कक्षा में पढ़ते हुए प्रफुल्ल नलिनी ने शान्ति घोष और सुनीति चौधरी के साथ मिल कर 'छात्र-संघ' का गठन किया था। इसीलिये स्टीवेन्स गोलीकांड के बाद पुलिस की निगाह प्रफुल्ल नलिनी ब्रह्म पर भी पड़ी।

1931 के अंत में उसे गिरफ्तार किया जाना था। पर वह गंभीर रूप से बीमार थी। इसलिये 1931 से 1936 तक उसे घर में ही, कड़ी निगरानी में, नजरबंद रखा गया। इसी दौरान उसकी पेट की बीमारी और गंभीर रूप धारण कर गई। लेकिन बीमारी की अति गंभीर अवस्था में भी पुलिस ने उसे चिकित्सा-सुविधा पाने के लिए छोड़ा नहीं। इसी कारण उसकी मृत्यु हो गई।

अपने क्रांतिकारी दल को अपना पूरा वेतन सौंपने वाली

मीरा दत्तगुप्ता

1934 के 'लेवंग गोलीकांड' में अन्य साथियों के साथ उज्ज्वला मजूमदार पकड़ ली गई थी। उसी केस की छानबीन करते समय संदेह में पुलिस ने जो गिरफ्तारियां कीं, मीरा दत्तगुप्ता का नाम उनमें से ही एक है।

मीरा दत्तगुप्ता का जन्म 5 अक्तूबर 1906 को ढाका में हुआ था। पिता श्री शरद कुमार दत्तगुप्ता, माता और मामा तीनों से उन्हें स्वदेशी-संस्कार मिला। पिता सरकारी अफसर थे। फिर भी क्रांतिकारियों की गुप्त रूप से सहायता करते थे। मीरा दत्तगुप्ता ने 1930 में गणित लेकर प्रथम श्रेणी में एम.ए. की डिग्री ली। कालेज-छात्रा के रूप में ही 'वेणु' पत्रिका के महिला विभाग का संपादन-संचालन किया। गुप्त दस्तावेज और अवैध हथियार गोपनीय ढंग से लाने-लेजाने, घर में छिपाने का काम भी करती रहीं।

पढ़ाई समाप्त करके 1931 में दल के निर्देश पर मीरा दत्तगुप्ता ने विद्यासागर कालेज के महिला विभाग में वाइस प्रिंसीपल का पद संभाला और अपना पूरा वेतन दल को देने लगीं।

1934 में गवर्नर एंडरसन को गोली लगने पर उसी लेवंग कांड में शामिल होने के संदेह में गिरफ्तार कर ली गईं। प्रमाण

न मिलने के कारण उन्हें दो साल के लिये बंगाल से निष्कासित कर दिया गया। 1937 में जब स्वशासन के तहत प्रांतीय सरकारें बनीं तो वह विधानसभा की सदस्य रहीं।

1942 के आंदोलन में भी सीधे भाग न लेकर उन्होंने गुप्त सहयोग दिया। धन संग्रह करके देती रहीं और हर संभव तरीके से आंदोलन को बल पहुंचाती रहीं। 1946 में अपने कई सहकर्मियों के साथ वह भी 'फारवर्ड ब्लाक' में शामिल हो गईं। विभाजन से पूर्व नोआखली के दंगा-पीड़ितों के लिए और बंगाल-दुर्भिक्ष के समय अभावग्रस्तों की सहायता के लिए उन्होंने खूब कार्य किया। इसके बाद बंगाल की एक प्रसिद्ध शिक्षाविद् के नाते भी उनकी सेवाएं उल्लेखनीय रहीं।

'ग्रिंडले बैंक डकैती-केस' में गिरफ्तार

शान्ति सुधा घोष

1917 में बारीसाल में जन्मी शान्ति सुधा घोष दिनेश मजूमदार के दल की एक सदस्या थी। 1931 में उसने 'शक्तिवाहिनी' नाम से छात्र-दल का गठन किया और लड़के-लड़कियों को व्यायाम व शस्त्र-चालन का प्रशिक्षण देने लगी। निम्न वर्ग के लोगों में देशभक्ति की भावना भरने के लिये उसने एक 'हरिजन विद्यामंदिर' भी खोला। अपने दल के वरिष्ठ साथियों की गिरफ्तारी के बाद शान्ति सुधा घोष दल का काम भी देखने लगी थी। इसीलिये **'ग्रिंडले बैंक डकैती-केस' में शामिल होने के संदेह में उसे गिरफ्तार कर लिया गया था। पर जेल में बीमार हो जाने के कारण उसे जल्दी छोड़ देना पड़ा। फिर भी पुलिस-निगरानी में घर में नजरबंद कर के रखा गया। यह नजरबंदी 1937 तक चली।**

रिहाई के बाद भी शान्ति सुधा घोष चुप नहीं बैठीं। गुप्त-कार्यवाहियों में हिस्सा लेती रही। इसीलिये जब 1942 में उग्र आंदोलन छिड़ा, तो तोड़फोड़ की कार्यवाहियों में शामिल होने के कारण फिर गिरफ्तार करके जेल भेज दी गई। पर इस बार भी बीमारी के कारण ही उसे रिहा करके घर में नजरबंद करना पड़ा। इस नजरबंदी के दौरान उसने अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ाना चाहा, पर इसकी अनुमति उसे नहीं दी गई। 1945 में रिहा होने के बाद ही वह कालेज में प्रवेश पा सकी।

क्रान्तिकारियों को शरण देने पर चार साल के लिए दण्डित

सावित्री देवी

जो महिलाएं क्रान्ति-आन्दोलन में सीधे भाग न लेकर भी केवल इसलिए दण्डित हुईं कि वे क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखती थीं, सावित्री देवी का नाम उन्हीं में से एक है। उन्होंने क्रांतिकारियों का समर्थन ही नहीं किया, उन्हें अपने घर में शरण भी दी। **सूर्यसेन, निर्मल सेन और प्रीतिलता शस्त्रागार काण्ड के बाद उनके ही मकान में छिप कर ठहरे थे।** ये क्रान्तिकारी उन्हें सम्मान से मासी-मां (मौसी जी) कहते थे।

12 जून, 1932 की रात सावित्री देवी के ये मेहमान खाने की मेज पर बैठे ही थे कि पुलिस ने सुराग पाकर मकान पर घेरा डाल दिया। आमने-सामने मुठभेड़ में निर्मल सेन पुलिस की गोली से मारे गए। सूर्यसेन व प्रीतिलता अंधेरे का लाभ उठाकर पिछले दरवाजे से भाग निकले। इस मुठभेड़ में पुलिस कप्तान कैमरान भी मारा गया था और प्रमुख नेता सूर्यसेन भी पुलिस के हाथ से निकल गए थे। **क्रोधित पुलिस ने बदला निकाला, बेचारी विधवा सावित्री देवी और उनके पुत्र रामकृष्ण से। रामकृष्ण क्षय रोगी था। फिर भी मां-बेटा दोनों गिरफ्तार कर लिए गए।**

दोनों को चार साल की कठोर कैद की सजा सुनाई गई। मां-बेटा दोनों ही मिदनापुर जेल में रखे गये थे, पर मां को अपने बीमार बेटे को देखने तक की इजाजत न थी। रामकृष्ण धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ता गया, पर फौलादी हृदय और दृढ़ संकल्प वाले इस रोगी क्रान्तिकारी ने मरते दम तक उफ़ न की। न मां से मिलने की जिद की, न माफी मांगकर छूटने की कोशिश की। मां सावित्री देवी को रामकृष्ण की मृत्यु पर भी दूर से ही एक नजर भर देखने दिया गया।

चार साल की इस लम्बी यातना के बाद रामकृष्ण तो शहीद हो कर यातना-मुक्त हो गया। पर विधवा मां सावित्री देवी की यातना का अन्त जेल से छूटने के बाद भी कहां हुआ? बेचारी अकेली, अभिशप्त जीवन बिताने के लिए मजबूर हो गई। चटगांव शस्त्रागार कांड की स्वर्ण जयंती के अवसर पर शहीद रामकृष्ण के बलिदान की याद को तो फिर भी सम्मानित किया गया, लेकिन बेचारी मां सावित्री देवी फिर भी भुला दी गईं।

क्रान्तिकारी कलाकार

इन्द्र सुधा घोष

मैमनसिंह में 1905 में जन्मी इन्द्र सुधा घोष ने मैमनसिंह स्कूल से मैट्रिक पास की। पिता सतीशचन्द्र घोष और माता प्रिया कुमारी देवी दोनों कलाप्रेमी थे। इसलिए उन्होंने अपनी पुत्री को शान्ति निकेतन के कला भवन में आचार्य नन्दलाल बसु के पास भेज दिया। 1926 से 1930 तक वह शान्ति निकेतन की कला-शिक्षार्थी रही। तभी 1926 से ही विप्लवी 'युगान्तर-दल' के प्रभाव में आकर क्रान्ति-कार्यों में सक्रिय हो गईं।

निषिद्ध साहित्य पढ़ना, नियमित व्यायाम करना, तेज भागना, शस्त्र-चालन सीखना, अवैध अस्त्र-शस्त्र शान्ति निकेतन के निरापद स्थान में छुपाना आदि सभी कार्य वह करती रही। 1932 में 'वाटसन हत्या षड्यंत्र' के मामले में फरार हो जाने वाले क्रान्तिकारियों के लिए आश्रय की व्यवस्था इन्द्र सुधा घोष ने कलकत्ता में भी कराई, चन्द्र नगर में भी। इसलिए सुराग मिलने पर सन्देह में पुलिस उसका भी पीछा करने लगी थी।

पुलिस उसके पीछे है, यह जानकर इन्द्र सुधा घोष भाग कर जलपाईगुड़ी के चाय बागान में पहुंच गई। पुलिस ने वहां से भी उसे ढूंढ़ निकाला। गिरफ्तार किया। प्रमाण के अभाव में रिहा करना पड़ा। फिर भी बिना मुकदमा चलाये उसे प्रेसीडेन्सी

व हिजली जेल में चार साल तक बन्दी रखा गया। 1937 में जाकर वह रिहा हुई।

हिजली के कठिन नीरस दिनों में समय काटने के लिए इन्द्र सुधा घोष ने बन्दियों की तस्वीरें बनाईं। इस अभ्यास से रिहाई के बाद उसकी कला और निखर चुकी थी।

रिवाल्वर-बरामदी पर चार साल के लिए जेल
वनलता दासगुप्ता और ज्योतिकना दत्त

वनलता दासगुप्ता का जन्म 1915 में ढाका, जिला विक्रमपुर के बिदगांव में हुआ था। पिता श्री हेमचन्द दासगुप्ता और माता निर्मला सुन्दरी दोनों सुशिक्षित और राष्ट्रप्रेमी थे। अपनी लड़की को भी उन्होंने अच्छी शिक्षा दिलाने की कोशिश की पर वनलता को बचपन से श्वास-रोग था। इसलिए उसकी शिक्षा रुक-रुक कर हुई। फिर भी उसने सामान्य शिक्षा के साथ खेल-व्यायाम से लेकर साईकल, मोटर, विमान-चालन तक का प्रशिक्षण लिया। मेडिकल में पढ़ने वाली उसकी कई सहेलियां विप्लवी दल की सदस्याएं थीं। दोनों बड़ी बहनों, चारु दासगुप्ता और शान्ति दासगुप्ता से भी उसे क्रान्ति की प्रेरणा मिली। आदर्श जीवन, कर्मठता और स्वदेशी के संस्कार भी घर से मिले। कालेज जीवन से ही वह स्वदेशी-प्रचार और बहिष्कार-आन्दोलन में भाग लेने लगी।

1930 के अन्त में कुछ नेताओं की गिरफ्तारी के बाद दल टूट गया। वनलता दासगुप्ता ने अगले 2 वर्ष अपनी पढ़ाई, स्वदेशी-प्रचार और शस्त्र-चालन प्रशिक्षण में बिताये। फिर 1933 में एक घटना घट गयी। कालेज-बोर्डिंग में रहते हुए वनलता दासगुप्ता अपना रिवाल्वर अपनी एक सहेली ज्योतिकना दत्त के पास छिपा कर रखती थी। एक दिन बोर्डिंग

में किसी लड़की के पैसे चोरी हो गए। चोरी के लिए तलाशी में ज्योतिकना दत्त के पास रिवाल्वर निकला। कालेज की तरफ से पुलिस को खबर दी गई। पुलिस ने ज्योतिकना को गिरफ्तार कर लिया।

पुलिस थाने पर पूछताछ के समय डर कर ज्योतिकना ने बता दिया कि रिवाल्वर वनलता ने उसके पास रखा था। दूसरे दिन पुलिस ने वनलता के घर की तलाशी ली और क्रान्ति-साहित्य व कुछ आपत्तिजनक कागज-पत्र बरामद किए। चूंकि रिवाल्वर ज्योतिकना के पास से निकला था, इसलिए ज्योतिकना को चार साल के लिए सश्रम कारावास की सजा मिली। वनलता पर प्रमाण के अभाव में मुकदमा नहीं चला। लेकिन बिना मुकदमा चलाये भी उसे तीन साल से अधिक जेल में रखा गया। दोनों सहेलियां हिजली और प्रेसीडेन्सी जेल में थीं।

वनलता जेल में भी अस्वस्थ रहती थी। साढ़े तीन साल बाद भी उसे स्वास्थ्य-कारण से ही छोड़ा गया। वह भी इस शर्त पर कि आगे राजनीति में भाग नहीं लेगी। इसके बावजूद, उसे अपनी दीदी के घर पर नजरबन्द रखा गया। बीमारी में जेल, फिर घर पर नजरबन्दी। इस कारण चिकित्सा-सुविधा उसे नहीं मिल पाई। 1 जुलाई, 1936 को 21 वर्ष की छोटी उम्र में ही उसकी मृत्यु हो गई।

'दीपाली संघ' की एक और सदस्या

रेणु सेन

रेणु सेन का जन्म 28 दिसम्बर, 1909 को मुन्शीगंज में हुआ। दादा मुन्शीगंज के प्रसिद्ध वकील थे। पिता विनोद बिहारी सेन और माता कुसुमकना सेन सुशिक्षित, कलाप्रेमी और देशभक्त थे। रेणु सेन का पालन-पोषण मामा के घर पर हुआ। मामा का परिवार प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लीला राय के सम्पर्क में था। लीला राय के 'दीपाली संघ' से शिक्षण लेकर रेणु सेन 'दीपाली संघ' में ही शामिल हो गई। 1930 में बी.ए. करने के बाद वह पूरी तरह संघ के कार्य के साथ जुड़ गई।

'दीपाली संघ' क्रान्तिकारी प्रशिक्षण के लिए एक प्रमुख संस्थान था, जो 'छात्र-संघ' और 'श्री संघ' की गतिविधियों के साथ भी निकट रूप से जुड़ा था। रेणु सेन इन सभी गतिविधियों में सहायक थी। 1930 से ही वह लीला राय के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका 'जय-श्री' के काम में भी सहयोग देने लगी थी।

'चटगांव शस्त्रागार कांड' के बाद जब 'श्री संघ' के संचालक श्री अनिल राय गिरफ्तार हुए और 'दीपाली संघ' के साथ 'श्री संघ' का भार भी उनकी पत्नी लीला राय ने संभाल लिया, तब 16 सितम्बर, 1930 को रेणु सेन भी सन्देह में गिरफ्तार हुई। उसे लाल बाजार थाने में पूरा एक महीना 'लाक-अप' में रखा गया।

लीला राय की गिरफ्तारी के बाद जब उसे 'जय-श्री' पत्रिका का काम देखना था, वह उस कार्य के लिए बाहर नहीं छोड़ी गयी। रेणु सेन को भी उसी दिन 20 दिसम्बर, 1931 को दुबारा गिरफ्तार कर लिया गया। लगभग एक साल के बाद हिजली जेल से वह रिहा हुई। फिर भी 1937 तक उसे उसके मुन्शीगंज वाले अपने घर में नजरबन्द रखा गया।

रेणु सेन ने नजरबन्दी के दौरान एम.ए. की पढ़ाई के लिए इजाजत मांगी, जो उसे नहीं मिली। तब उसने सभी नजरबन्दियों के लिए अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ाने और जीविका के लिए उपार्जन करने के अधिकार की मांग करते हुए हाईकोर्ट में याचिका दायर कर दी। उत्तर न मिलने पर कानून भंग करके बाहर आई। थोड़ा हंगामा हुआ, पर हाईकोर्ट ने सरकार के विरुद्ध याचिका स्वीकार कर ली।

इस तरह रेणु सेन ने जेल में व फिर नजरबन्दी में रहते हुए अपनी एम.ए. की पढ़ाई पूरी की और फिर डेढ़ साल से बन्द 'जय-श्री' पत्रिका का पुनः प्रकाशन आरंभ कर दिया। अक्तूबर 1937 में लीला राय के जेल से छूटकर आने तक रेणु सेन 'जय-श्री' को संभाले रही। 25 जनवरी, 1940 को नामी विप्लवी डा. अतीन्द्रनाथ बसु के साथ विवाह करके रेणु सेन रेणु बसु बन गई। पति के साथ 1942 के आन्दोलन में कूदने का भी उनका पूरा इरादा था। पर देश को आजाद देखने की साध मन में लिए 2 जुलाई, 1942 को ही उनकी मृत्यु हो गई।

टीटागढ़ मामले में सहायता पहुंचाने वाली

सरोज दासचौधरी (नाग)

सरोज दासचौधरी का जन्म बारीसाल में हुआ। पिता का नाम रोहिणी दासचौधरी व माता का नाम प्रमोदा सुन्दरी देवी था। सरोज दासचौधरी ने 1929 में विप्लवी प्रतिष्ठान 'अनुशीलन समिति' से दीक्षा ली। 1934 में बारीसाल से बी.ए. पास करने के बाद वह स्थानीय महिला समिति की अध्यक्ष बनीं और युवतियों को संगठित करने लगीं। उनके दल की ये लड़कियां निषिद्ध साहित्य बांटने, टीटागढ़ मामले के गोपनीय दस्तावेज इधर से उधर पहुंचाने और क्रांतिकारियों की सहायता के लिए धन जुटाने का काम करती थीं।

सरोज दासचौधरी का घर भी क्रांतिकारियों के लिए आश्रय-स्थल बना हुआ था। तभी पुलिस की नजर उस पर पड़ी। घर की तलाशी ली गई। आपत्तिजनक सामग्री उनके घर से नहीं मिली। उसे तो वह इधर-उधर छिपा कर रखती थीं। इसलिए तलाशी के तुरन्त बाद उनकी गिरफ्तारी नहीं हुई। फिर भी सन्देह के कारण उन्हें बार-बार थाने जाकर हाजिरी लगवानी पड़ती थी। साहस और बुद्धि-कौशल के बावजूद, 1935 में वह पुलिस की गिरफ्त में आ ही गईं। लगभग दो साल तक उन्हें बिना कोई मुकदमा चलाये ही दीनाजपुर, दार्जिलिंग और मिदनापुर जेलों में रखा गया।

1937 में रिहाई के बाद वह फिर सक्रिय हो गईं। 1938 में एक विप्लवी साथी धीरेन्द्रनाथ नाग से विवाह करके सरोज नाग कहलाईं। 1942 के आंदोलन में सामने न आकर भी पति-पत्नी क्रांतिकारियों को आश्रय देते रहे और सामाजिक कार्यक्षेत्र में काम करते हुए भी छिपे तौर पर आंदोलन-कार्यों को पूरी सहायता पहुंचाते रहे। जेल के कष्टों और बाद में भी निरन्तर कार्य से सरोज नाग का स्वास्थ्य बिगड़ गया था। रोग असाध्य हो जाने पर 19 अगस्त, 1951 को उनकी मृत्यु हो गई।

बंगाल के अन्य ज्ञात-अज्ञात नाम

सूर्यसेन की एक और साथिन

क्षीरोद प्रभा विश्वास

श्रीमती क्षीरोद प्रभा विश्वास स्वर्गीय महिम चन्द्र विश्वास की विधवा थीं। उन्होंने 'चटगांव शस्त्रागार-कांड' में सीधे कोई भाग नहीं लिया। पर वह सूर्यसेन की साथिनों में से एक थीं। सूर्यसेन, कल्पना दत्त, शांति चक्रवर्ती, मणीन्द्र दत्त व अन्य साथियों को उन्होंने अपने घर में शरण दी थी। पुलिस को पता चल जाने पर 16 फरवरी, 1933 की रात श्रीमती क्षीरोद प्रभा विश्वास का घर घेर लिया गया। यहीं क्रांतिकारियों की पुलिस से मुठभेड़ के समय कुछ साथी मारे गए। कल्पना दत्त भागकर बच निकलने में सफल हो गईं। सूर्यसेन व ब्रिजेन सेन इसी मुठभेड़ के समय पुलिस की गिरफ्त में आ गए थे। उनकी गिरफ्तारी के बाद दूसरे दिन सुबह क्षीरोद प्रभा विश्वास भी गिरफ्तार कर ली गई थीं। **उन्हें चार साल का सश्रम कारावास भोगना पड़ा था।** इसके अलावा, उनके बारे में अन्य विवरण नहीं मिल पाए।

'युगान्तर दल' का एक और नाम

कमला चटर्जी

मैमनसिंह में 'युगान्तर दल' की सदस्या कमला चटर्जी भी एक प्रसिद्ध कार्यकर्त्री थीं। अनेक गतिविधियों में उनके आगे बढ़ कर भाग लेने के विवरण मिलने पर 'बंगाल आर्डीनेंस' में उन्हें 1932 से 1937 तक पांच बर्ष जेल की कड़ी कैद की सजा दी गई थी। पर इनके बारे में भी अन्य विवरण नहीं मिले, सिवाय इसके कि उसके पास लेखन-प्रतिभा भी थी।

'चटगांव आर्म्स एक्ट' में गिरफ्तार किशोरी

निर्मला चक्रवर्ती

सूर्य सेन के साथियों व समर्थकों में सजा-प्राप्त एक छोटी लड़की का नाम भी मिलता है। वह थी, **चौदह वर्षीय किशोरी** निर्मला चक्रवर्ती, **जिसे 'चटगांव आर्म्स एक्ट' में डेढ़ साल की कड़ी कैद की सजा दी गयी थी।** इसके बाद भी उसे बख्शा नहीं गया। इतनी अल्पवयस्क लड़की को भी खतरा समझ, उसे दो साल के लिए अपने जिले से निष्कासित कर दिया गया था।

ग्रिंडले बैंक को धोखा देने के आरोप में गिरफ्तार

लीला कमाल और शर्मिष्ठा घोष

आशुतोष कालेज की ये छात्राएं ग्रिन्डले बैंक कलकत्ता से क्रांतिकारी-फंड के लिए एक बड़ी धन-राशि का झूठा चैक भुनाते समय पकड़ी गई थीं। लीला कमाल संदेह का लाभ लेकर छूट गई। शर्मिष्ठा घोष को लंबी सजा मिली। कितनी? इसका विवरण नहीं मिला।

नेली सेनगुप्त के मकान पर नजरबंद की गई

अमिता सेन व अन्य

श्रीमती अमिता सेन को भी 'बंगाल आर्डीनेंस' में पकड़ा गया था। 1936 में बीमारी के कारण सरकार को उन्हें छोड़ना पड़ा, तो जेल से निकाल कर श्रीमती नेली सेनगुप्त के मकान पर नजरबंद कर दी गई थीं। ठीक होने पर हिजली जेल भेजी गईं व फिर 1938 में छूटीं।

मैमनसिंह के गांव मिरजापुर के स्वर्गीय बंकिम चन्द्र गुप्ता की पुत्री (नाम नहीं मिला) अपने सूटकेस में गोला-बारूद ले जाती हुई पकड़ी गई थी। उसे विस्फोटक पदार्थ अपने पास रखने और क्रांतिकारियों की सहायता करने के अपराध में पांच साल की कड़ी कैद की सजा दी गई थी। अन्य कई नाम भी मिलते हैं, जिनके साथ सजा के रिकार्ड दर्ज हैं, पर उनके बारे में अन्य विवरण नहीं मिल सके। जैसे: – सरयू चौधरी – टीटागढ़ मामले में चार साल जेल। श्रीमती आशा दास गुप्ता – पांच साल जेल। श्रीमती अरुणा सान्याल – पांच साल जेल। सुरमा दास गुप्ता – डेढ़ साल जेल। कमला दास – 1930 में 'डलहौजी-केस' में गिरफ्तार, प्रमाण के अभाव में मुक्ति। श्रीमती सत्यारानी दत्त–पति सुरेन्द्र नाथ दत्त के साथ 1930 के 'डलहौजी-केस' में गिरफ्तार। पति अण्डमान भेजे गए। सत्यारानी को कितनी अवधि तक जेल में रखा गया इसका विवरण नहीं मिला। माया नाग, हास्याबाला देवी, निर्मला देवी, निरूपमा देवी, सुप्रभा भद्र – 1933 से लेकर 1977 तक अपने घर में नजरबंद रहीं। चारु चक्रवर्ती – 'चटगांव अनुशीलन-दल' की सदस्या के नाते गिरफ्तार हुई थी, 1934 में हिजली जेल में कितनी अवधि तक रही? विवरण नहीं मिला। ममता मुखर्जी – कुमिल्ला में नजरबंद रही। ऐसे अन्य न जाने कितने नाम रहे होंगे!

(ख) पंजाब व उत्तर प्रदेश की प्रमुख क्रांतिकारी महिलाएं

देश के लिए अपना सब कुछ लुटाने वाली

दुर्गा भाभी

सन् 1928। आजादी की लड़ाई के जोश में एक नया उबाल आया था। 'साइमन कमीशन' की सिफारिशों से भारतीयों पर गुलामी और जुल्म का शिकंजा और कसने वाला था। इस कमीशन का बहिष्कार करने के लिए जगह-जगह विरोध-प्रदर्शन हो रहे थे। लाहौर में ऐसे ही एक बहिष्कार-जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे, पंजाब के प्रसिद्ध नेता — लाला लाजपतराय। पुलिस ने बेरहमी से लाठी-चार्ज किया। वयोवृद्ध नेता लाला जी भी गंभीर रूप से घायल हुए। इसी से कुछ समय बाद उनकी मृत्यु हो गई।

'भारत नौजवान सभा' के क्रांतिकारी साथियों — वीर चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, बटुकेश्वर दत्त आदि ने मिलकर लाला लाजपतराय की शहादत का बदला लेने की योजना बनाई। भगत सिंह ने अंग्रेज सार्जेंट सान्डर्स को दिनदहाड़े गोली से उड़ा दिया। भगत सिंह का पीछा करने वाले पुलिस सब-इन्सपेक्टर को चंद्रशेखर आजाद ने गोली मार कर ठंडा कर दिया। फिर ये सारे साथी

पुलिस की नजरों से छिप कर इधर-उधर हो गए। उसी रात शहर की दीवारों पर जगह-जगह एक पोस्टर चिपका दिया गया, जिस में लिखा था, "यह देशभक्त लाला लाजपतराय की मौत का बदला है।"

अंग्रेज सरकार क्रांतिकारियों की इस हरकत से बौखला उठी। बाहर जाने के सभी रास्ते बंद कर दिए गए थे। लाहौर के चप्पे-चप्पे पर पुलिस तैनात थी। इन लोगों को पकड़ने के लिए गुप्तचरों का जाल बिछा था। फिर भी ये लोग उस समय पकड़े नहीं गए। बच कर निकल गए।

कैसे?

दुर्गा भाभी की मदद से।

कौन थीं यह दुर्गा भाभी? क्रांतिकारियों से इनका क्या संबंध था? कैसे वह इनकी मदद करते-करते स्वयं भी क्रांतिकारी बन गई थीं? ... आज क्रांतिकारी नहीं, एक अवकाशप्राप्त शिक्षिका और वृद्ध समाजसेविका के रूप में अभी भी दुर्गा भाभी हमारे बीच हैं। वे रोमांचक घटनाएं अब उनके अतीत की गौरवमय यादें भर हैं। पर कितनी कीमती यादें?"

उन्हीं यादों में से निकाल कर उनकी एक संक्षिप्त कहानी यहां दी जा रही है :

इसी चन्द्रशेखर-भगत सिंह वाले क्रांतिकारी-दल के एक साथी थे, भगवतीचरण वोहरा। घर से समृद्ध होने के कारण वह धन से भी क्रांतिकारियों की मदद करते थे, स्वयं भी क्रांति-कार्यों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। 7 अक्तूबर 1907 को इलाहाबाद में जन्मी दुर्गा देवी उन्हीं की पत्नी थीं। दल के सभी साथियों को समय पर घर में आश्रय देकर

खिलाती-पिलाती थीं। प्यार और सेवा देती थीं। इसलिए सभी की प्रिय भाभी थीं वह।

उनके पति भगवतीचरण वोहरा उन दिनों एक मामले में फरार थे। दुर्गा भाभी अपना घर छोड़ लाहौर की एक गली के छोटे से मकान में रह रही थीं। अचानक दरवाजे की कुंडी खड़की। भाभी ने दरवाजा खोला। सुखदेव धीरे से भीतर दाखिल हुए। आते ही बोले, "भाभी, किसी की जान बचानी है। तुम्हें उस के साथ उसकी बीबी बन कर सफर करना होगा। बच्चा शचीन्द्र भी साथ जाएगा। यूरोपीय वेशभूषा में तुरंत तैयार हो जाओ।" भाभी समझ गईं, भगत सिंह और साथी अपना काम कर चुके हैं। उन्होंने तुरंत हामी भर दी। सुखदेव चले गए।

दो घंटे बाद फिर कुंडी खड़की और एक सूटेड-बूटेड युवक ने भीतर प्रवेश किया। पुलिस की आंखों में धूल झोंकने के लिए सरदार भगत सिंह ने दाढ़ी-मूंछ मुंडवा दी थी और अब कायदे से कटे बालों पर हैट लगाए भाभी के सामने खड़े मुस्करा रहे थे। साथ में मैले-कुचैले कपड़े पहने नौकर के भेष में राजगुरु था। भाभी देख कर दंग रह गईं। तैयार थीं ही। मुस्करा कर तुरंत उनके साथ चल दीं।

उसी रात रेल के फर्स्टक्लास के डिब्बे में यह 'नौजवान अंग्रेज जोड़ा', अपने बच्चे और नौकर के साथ सवार हुआ। पुलिस को जरा भी संदेह नहीं हुआ। इस तरह भाभी नकली अंग्रेज-पत्नी बन कर भगत सिंह को लाहौर से लखनऊ तक सुरक्षित निकाल ले गईं। लखनऊ से आगे तार दे कर कलकत्ता में सुशीला दीदी को खबर दे दी गई और कलकत्ता में भगत

सिंह को सुशीला दीदी ने संभाल लिया। ये भाभी और दीदी अंत तक इन क्रांतिकारियों के साथ थीं।

इन्हीं की मदद से पुलिस किसी भी तरह भगत सिंह व साथियों को पकड़ नहीं पाई। मामला कुछ ठंडा पड़ने लगा कि दिल्ली की असेंबली में बम फेंक कर भगत सिंह व साथियों ने फिर हंगामा किया कि 'अंग्रेजी हुकूमत की जड़ें हिलें, भले ही हमें फांसी हो जाए।' और वे लोग पकड़े गए।

दुर्गा भाभी, सुशीला दीदी और सभी साथी एक और बड़ा 'एक्शन' कर उन्हें छुड़ाने की योजना बनाने लगे। दिल्ली में एक बम-फैक्टरी बनाई गई। उसी के बने बम का एकांत जगह रावी के किनारे परीक्षण किया गया। तभी 28 मई, 1930 को हुए बम-विस्फोट में भगवतीचरण वोहरा की मृत्यु हो गई। दुर्गा भाभी पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। पर दल के नेता चन्द्रशेखर आजाद और अन्य साथियों का सहारा पाकर भाभी फिर क्रांति-कार्यों में लग गईं। फिर एक दिन उस बम-फैक्टरी में भी विस्फोट हो गया। भेद खुलने के डर से ये लोग फरार हो गए।

फरारी के दौरान भाभी की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई थी। उनके नाम गिरफ्तारी का वारंट था। साथ में तीन साल का छोटा बच्चा भी था। लुकती-छिपती भाभी यहां-वहां मारी मारी फिरीं। फिर भी भगत सिंह व साथियों की रिहाई के लिए उन्होंने हर कोशिश की। भारी लंहगे-ओढ़नी में मारवाड़ी स्त्री बन, अस्त्र-शस्त्र छिपा कर इधर-उधर ले जाना। मुकदमे के लिए धन-संग्रह करना। जेल में गुप्त भेटों का प्रबंध कर संदेश-सूचनाएं लाना-पहुंचाना। गांधीजी से गुप्त भेंट कर

भगत सिंह व साथियों की रिहाई के लिए प्रयत्न करना आदि। इसलिए जब भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव को फांसी की सजा सुनाई गई तो उन्हें बहुत धक्का पहुंचा। जेल से अपने साथियों को छुड़ाने की उनकी कोशिशें बेकार हो गई थीं। पुलिस उनका पीछा कर रही थी। आर्थिक कष्ट और बच्चे की समस्या अलग थी। अंग्रेजों से बदले की भावना आक्रोश बन कर भीतर उबल रही थी। मन की इसी हालत में बच्चा किसी को सौंप कर भाभी ने स्वयं भी एक 'एक्शन' करने की ठान ली।

उन्होंने बम्बई में पुलिस कमिश्नर को मारने की योजना बनाई। रात आठ बजे काली साड़ी पहन, पृथ्वी सिंह के साथ वह कार में निकलीं। मालाबार हिल रोड पर कमिश्नर के बंगले पर सख्त पहरा था। लेमिंग्डन रोड पर जैसे ही चार अंग्रेज स्त्री-पुरुष बंगले की तरफ से आते दिखाई दिए, भाभी ने गोली चला दी। दो गोरे और एक मेम गोलियों से घायल हो गए। वार गलत हो गया। कमिश्नर उनमें नहीं था। पर पकड़े जाने का खतरा सामने था। भाभी ने तुरंत मकान पर पहुंच, साड़ी बदली, फिर वह मकान छोड़ दिया। इस केस में बहुत कष्ट उठाते हुए पहले वह छिपती-बचतीं फिरीं, तंग आकर फिर गिरफ्तार हो गईं। लेकिन पुलिस को सबूत नहीं मिले। इसलिए केवल नजरबंद रखी गईं। इसके बाद रिहा कर दी गईं।

इस बीच इधर चन्द्रशेखर आजाद 27 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस से लड़ते हुए शहीद हुए, उधर 23 मार्च, 1931 को भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दे दी गई। अब उनका हमदर्द भाई आजाद भी उनसे छिन

चुका था। भाभी अपने को बहुत दुखी व बेसहारा अनुभव कर रही थीं। क्रांति की असफलता के गहरे घाव मन में दबाए वह गाजियाबाद आकर अध्यापन, कांग्रेस-कार्य और समाजसेवा में लग गईं। 1937 से 1982 तक उन्होंने लखनऊ में शिक्षण-केन्द्र चलाया। अब अस्वस्थता और वृद्धावस्था के कारण फिर गाजियाबाद आ गई हैं और अपने उसी एकमात्र बेटे शचीन्द्र वोहरा के साथ रह रहीं हैं।

भगत सिंह की एक और साथी

सुशीला दीदी

भगत सिंह व साथियों की प्रिय दीदी सुशीला के बारे में मुझे यत्र-तत्र बिखरे हुए ये विवरण मिले थे–

– काकोरी कांड के मुकदमे की पैरवी के लिए सुशीला दीदी ने अपनी शादी के लिए रखा हुआ दस तोले सोना उठाकर दान में दे दिया था।
– 'लाहौर-षड्यंत्र केस' के बाद सरदार भगत सिंह जब दुर्गा भाभी के साथ कलकत्ता पहुंचे तो स्टेशन पर भगवतीचरण वोहरा और सुशीला दीदी ने उनका स्वागत किया। फिर भगत सिंह को दीदी के संरक्षण में छोड़कर भाभी लौट आयीं।
– दिल्ली में वाइसराय की ट्रेन उड़ाने की योजना बनी तो इस काम में मदद के लिए भगवतीचरण ने सुशीला दीदी को दिल्ली बुलाया और अपना काम करके वह कलकत्ता लौट गयीं।
– जेल में लम्बी भूख हड़ताल करके शहीद होने वाले यतीन्द्रनाथ दास का शव जब लाहौर से कलकत्ता पहुंचा तो सुशीला दीदी ने उसकी आरती उतारी।
– क्रान्तिकारियों का केस लड़ने के लिए फण्ड की जरूरत पड़ी तो सुशीला दीदी ने अपनी महिला-टोली के साथ कलकत्ता

में 'मेवाड़ पतन' नाटक खेला और जगह-जगह सभाओं में जाकर झोली फैलाई।

– दिल्ली 'असेम्बली बम-काण्ड' के बाद भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ा लाने की योजना बनी तो सुशीला दीदी को कलकत्ता की अपनी नौकरी छोड़कर पूरी तरह दल के काम में लग जाना पड़ा। उन्होंने अपनी उंगली चीरकर 'एक्शन' पर जाने वाले साथियों का खून से टीका किया।

– अज्ञातवास पर जाने से पहले सुशीला दीदी ने भगत सिंह को जेल में अपनी राखी के साथ जो पत्र भेजा था, 'स्वतंत्र भारत' में उसके प्रकाशन पर सम्पादक श्री भागवत को राजद्रोह के मुकदमे में दस हजार रुपये जुर्माने के साथ छः साल की कैद की सजा मिली थी।

– सुशीला दीदी ने कश्मीर बिल्डिंग वाली बम-फैक्ट्री में सिख लड़के के भेष में रहकर बम बनाना सीखा।

– बहावलपुर वाली कोठी में दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी क्रान्तिकारियों के साथ इस तरह रहती थीं कि वे लोग एक परिवार के सदस्य लगें और किसी को कोई सन्देह न हो। जिस दिन कोठी में बम-विस्फोट हुआ, दोनों को आपत्तिजनक गोला-बारूद से भरी हुई भारी अटैचियों के साथ वहां से जल्दी में भागना पड़ा था।

– सुशीला दीदी के नाम दो-दो वारंट थे। उन्हें पकड़वाने वाले के लिए इनाम भी घोषित था। फिर भी 1932 में हुए प्रतिबन्धित कांग्रेस के दिल्ली-अधिवेशन में फरार दीदी ने 'इन्दु' के नाम से एक महिला-टोली का नेतृत्व किया

और गिरफ्तार होकर जेल गयीं। जेल में इंदु नाम से वह छः महीने की पूरी अवधि भी काट आयीं, पर किसी ने उन्हें पहचाना नहीं।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम और क्रान्तिकारी-संघर्ष के इतिहास की पुस्तकें देखते-देखते ये टुकड़े-टुकड़े सन्दर्भ हर जगह मिले। एक अदद भाभी और एक अदद दीदी का नाम तब हजार-हजार सरफरोशों के लिए बलिदान की प्रेरणा बन गया था। भाभी यानी सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवतीचरण वोहरा की पत्नी दुर्गा भाभी। सौभाग्य से दुर्गा भाभी अभी हमारे बीच हैं। यों भी पत्रों में कई बार छपने से लोग उनके बारे में काफी कुछ जान गये हैं। पर यह दीदी कौन थीं? लाहौर, दिल्ली, कलकत्ता सभी जगह की क्रान्तिकारी-गतिविधियों से जुड़ी थीं, तो आखिर वह रहने वाली कहां की थीं? सभी क्रान्तिकारियों की दीदी वह कैसे बनीं?

ऐसे अनेक प्रश्न मन में घुमड़ रहे थे। दर्जनों पुस्तकें उलटने-पुलटने पर भी सिवाय इसके कुछ हाथ न लगता था कि वह कहां-कहां उपस्थित थीं और फिर फरार हो गयी थीं।

खोज करने पर पता चला कि बाद में दिल्ली में निवास करने वाली सुशीला मोहन ही सुशीला दीदी थीं। वारंट की अवधि समाप्त होने पर फरारी जीवन में अपने एक मददगार श्री मोहन के साथ विवाह करके वह स्थायी रूप से दिल्ली में बस गई थीं। पुरानी दिल्ली में स्त्रियों के लिए एक शिल्प-विद्यालय चलाने के साथ कांग्रेस का काम भी कर रही थीं। दिल्ली नगर निगम में कुछ समय वह 'एल्डरमैन' भी रहीं। उनके नाम पर एक सड़क है। कम्पनी बाग के पास

उनका एक 'स्टैच्यू' भी खड़ा किया गया है। फिर लोग उन्हें भूल कैसे गए?

दिल्ली में रहते हुए भी दिल्ली में खोई सुशीला दीदी को महीनों की भटकन के बाद मैंने कैसे खोजा, यह अपने आप में एक अलग मार्मिक कहानी है।

सुशीला दीदी का जन्म 5 मार्च, 1905 को गुजरात (पंजाब-अब पाकिस्तान) के एक गांव दत्तोचूहड़ में हुआ था। पिता डा. कर्मचंद फौज में मेडीकल अफसर थे। 1927 में वह सेवामुक्त हुए, तो उनके मन में महायुद्ध के विनाश से निराशा और अंग्रेजों के प्रति नफरत भरी थी। इसीलिए उन्होंने सरकार द्वारा दिए गए 'युद्ध-सेवा मैडल' और 'राय साहब' की उपाधि लेने से इन्कार कर दिया। वह लोकमान्य तिलक के प्रशंसक थे। एक चरित्रवान देशभक्त थे। इसलिए बच्चों को अंग्रेजी राज के स्कूलों में नहीं बल्कि उस समय स्थापित राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ाना चाहते थे।

सुशीला की मां उन्हें किशोरावस्था में छोड़ कर चल बसी थीं। पिता फौज में थे सो छोटे भाई-बहनों को पालने-पढ़ाने का भार घर की बड़ी लड़की होने के नाते सुशीला पर ही आया। सभी बच्चे गुजरांवाला में अपने एक डाक्टर चाचा के यहां रहते थे। जो बड़ा होता गया, पिता की इच्छानुसार उसे राष्ट्रीय विद्यालय भेज दिया गया। इस तरह दोनों भाई नेशनल स्कूल में और तीनों बहनें जालंधर कन्या विद्यालय में पढ़ने लगीं। छोटे भाई बहनों को स्कूल भेजने लायक बड़ा करने तक सुशीला घर पर रहीं, इसीलिए कन्या विद्यालय में उसकी अपनी शिक्षा अपनी छोटी बहनों के साथ ही देर से शुरू हुई। 1921-27 तक सुशीला कन्या विद्यालय में ही थीं।

इस राष्ट्रीय विद्यालय की भूतपूर्व प्रधानाचार्या कुमारी लज्जावती और उस समय की प्रधानाचार्या शन्नो देवी अपनी छात्राओं में राष्ट्रीय भावनाएं भरने के लिए प्रसिद्ध रही हैं। इसीलिए उनकी अनेक छात्राएं बाद में स्वतंत्रता-सेनानी बनीं। यहीं रह कर सुशीला ने कई राष्ट्रीय प्रेरणा-गीत लिखे। लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी पर उनका लिखा गीत 'गया ब्याहन आजादी लाडा भारत दा' छाप कर सारे पंजाब में बांटा गया था।

यहीं से 1926 में कुछ लड़कियों का एक दल जब देहरादून हिंदी साहित्य सम्मेलन में गया तो इनकी भेंट हुई लाहौर नेशनल कालेज से आए कुछ क्रांतिकारी विद्यार्थियों – भगत सिंह व साथियों से। भगवतीचरण वोहरा और उनकी पत्नी दुर्गा देवी से भी इनकी पहली भेंट वहीं हुई थी। इन लोगों ने जालंधर की इन लड़कियों को कुछ गुप्त परचे बांटने के लिए दिए थे। लौट कर अपनी सहपाठिनी लीला के साथ मिल कर सुशीला देवी ने बड़े सफल ढंग से ये परचे बांटे। कुछ परचे डाक से अधिकारियों के पास भी भेज दिए गए। इससे बड़ी सनसनी फैली, पर इनके नाम पर किसी को कोई संदेह नहीं हुआ।

1927 में सुशीलाजी बी.ए. की परीक्षा दे रही थीं कि 'काकोरी-केस' के क्रान्तिकारियों को फांसी दिए जाने की खबर सुन कर परीक्षा-हाल में बेहोश हो गईं। इन कैदियों को छुड़वाने के लिए तो उन्होंने अपनी शादी के लिए मां द्वारा रखा गया सारा सोना दान में दे दिया था। उनका प्रयत्न व्यर्थ गया था। इस दुख में उनका एक परचा भी रह गया। स्नातक बनने के बाद सुशीला एक वर्ष तक उसी विद्यालय में पढ़ाती

रहीं। साथ ही भगत सिंह, भगवतीचरण आदि के साथ काम भी करती रहीं।

भगवतीचरण का ग्वालमंडी वाला घर उन दिनों क्रांतिकारियों की गतिविधियों का केंद्र बना हुआ था। सुशीला वहां आती-जाती रहती थीं। पिता जब तक नौकरी से रिटायर नहीं हुए, सुशीला कालेज की छुट्टियों में भी घर नहीं जाती थीं कि पिता की नौकरी पर कोई आंच न आए। कुमारी लज्जावती कन्या विद्यालय से अवकाश लेकर लाला लाजपतराय के साथ काम कर रही थीं। उन्होंने ही सुशीला के लिए छुट्टियों में दुर्गा भाभी के घर रहने की व्यवस्था कर दी थी। यहीं उनका परिचय यशपाल, धनवंतरि आदि साथियों से भी हुआ। वह दल की एक सक्रिय सदस्या ही नहीं थीं, दुर्गा भाभी के साथ रहने के कारण सभी क्रांतिकारियों की दीदी भी बन गई थीं।

कलकत्ता के सेठ सर छज्जूराम चौधरी का परिवार भी राष्ट्रीय विचारधारा का था। अपनी लड़की सावित्री को मिशनरी स्कूल में न भेज कर उन्होंने जालंधर कन्या विद्यालय से एक ऐसी अध्यापिका की मांग की, जो उनके घर पर रह कर सावित्री को राष्ट्रीय संस्कार वाली शिक्षा दे सके। प्रधानाचार्या श्रीमती शान्नो देवी ने सुशीला दीदी को वहां भिजवा दिया। सुशीला दीदी ने अपनी योग्यता और स्वभाव से इस तरह उस परिवार का मन जीता कि सेठ छज्जूराम की पत्नी लक्ष्मी देवी भी उनकी भक्त बन गईं। लक्ष्मी देवी को विश्वास में लेकर ही सुशीला दीदी ने पहले 'मेरठ-केस' में फरार भगवतीचरण वोहरा को उस घर में ठहराया था, फिर 'लाहौर षड्यंत्र-केस' में फरार सरदार भगत सिंह को।

भगत सिंह व साथियों की रिहाई के लिए प्रयत्न करना आदि। इसलिए जब भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव को फांसी की सजा सुनाई गई तो उन्हें बहुत धक्का पहुंचा। जेल से अपने साथियों को छुड़ाने की उनकी कोशिशें बेकार हो गई थीं। पुलिस उनका पीछा कर रही थी। आर्थिक कष्ट और बच्चे की समस्या अलग थी। अंग्रेजों से बदले की भावना आक्रोश बन कर भीतर उबल रही थी। मन की इसी हालत में बच्चा किसी को सौंप कर भाभी ने स्वयं भी एक 'एक्शन' करने की ठान ली।

उन्होंने बम्बई में पुलिस कमिश्नर को मारने की योजना बनाई। रात आठ बजे काली साड़ी पहन, पृथ्वी सिंह के साथ वह कार में निकलीं। मालाबार हिल रोड पर कमिश्नर के बंगले पर सख्त पहरा था। लेमिंग्डन रोड पर जैसे ही चार अंग्रेज स्त्री-पुरुष बंगले की तरफ से आते दिखाई दिए, भाभी ने गोली चला दी। दो गोरे और एक मेम गोलियों से घायल हो गए। वार गलत हो गया। कमिश्नर उनमें नहीं था। पर पकड़े जाने का खतरा सामने था। भाभी ने तुरंत मकान पर पहुंच, साड़ी बदली, फिर वह मकान छोड़ दिया। इस केस में बहुत कष्ट उठाते हुए पहले वह छिपती-बचतीं फिरीं, तंग आकर फिर गिरफ्तार हो गईं। लेकिन पुलिस को सबूत नहीं मिले। इसलिए केवल नजरबंद रखी गईं। इसके बाद रिहा कर दी गईं।

इस बीच इधर चन्द्रशेखर आजाद 27 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस से लड़ते हुए शहीद हुए, उधर 23 मार्च, 1931 को भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दे दी गई। अब उनका हमदर्द भाई आजाद भी उनसे छिन

चुका था। भाभी अपने को बहुत दुखी व बेसहारा अनुभव कर रही थीं। क्रांति की असफलता के गहरे घाव मन में दबाए वह गाजियाबाद आकर अध्यापन, कांग्रेस-कार्य और समाजसेवा में लग गईं। 1937 से 1982 तक उन्होंने लखनऊ में शिक्षण-केन्द्र चलाया। अब अस्वस्थता और वृद्धावस्था के कारण फिर गाजियाबाद आ गई हैं और अपने उसी एकमात्र बेटे शचीन्द्र वोहरा के साथ रह रहीं हैं।

भगत सिंह की एक और साथी

सुशीला दीदी

भगत सिंह व साथियों की प्रिय दीदी सुशीला के बारे में मुझे यत्र-तत्र बिखरे हुए ये विवरण मिले थे–

– काकोरी कांड के मुकदमे की पैरवी के लिए सुशीला दीदी ने अपनी शादी के लिए रखा हुआ दस तोले सोना उठाकर दान में दे दिया था।

– 'लाहौर-षड्यंत्र केस' के बाद सरदार भगत सिंह जब दुर्गा भाभी के साथ कलकत्ता पहुंचे तो स्टेशन पर भगवतीचरण वोहरा और सुशीला दीदी ने उनका स्वागत किया। फिर भगत सिंह को दीदी के संरक्षण में छोड़कर भाभी लौट आयीं।

– दिल्ली में वाइसराय की ट्रेन उड़ाने की योजना बनी तो इस काम में मदद के लिए भगवतीचरण ने सुशीला दीदी को दिल्ली बुलाया और अपना काम करके वह कलकत्ता लौट गयीं।

– जेल में लम्बी भूख हड़ताल करके शहीद होने वाले यतीन्द्रनाथ दास का शव जब लाहौर से कलकत्ता पहुंचा तो सुशीला दीदी ने उसकी आरती उतारी।

– क्रान्तिकारियों का केस लड़ने के लिए फण्ड की जरूरत पड़ी तो सुशीला दीदी ने अपनी महिला-टोली के साथ कलकत्ता

में 'मेवाड़ पतन' नाटक खेला और जगह-जगह सभाओं में जाकर झोली फैलाई।

– दिल्ली 'असेम्बली बम-काण्ड' के बाद भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ा लाने की योजना बनी तो सुशीला दीदी को कलकत्ता की अपनी नौकरी छोड़कर पूरी तरह दल के काम में लग जाना पड़ा। उन्होंने अपनी उंगली चीरकर 'एक्शन' पर जाने वाले साथियों का खून से टीका किया।

– अज्ञातवास पर जाने से पहले सुशीला दीदी ने भगत सिंह को जेल में अपनी राखी के साथ जो पत्र भेजा था, 'स्वतंत्र भारत' में उसके प्रकाशन पर सम्पादक श्री भागवत को राजद्रोह के मुकदमे में दस हजार रुपये जुर्माने के साथ छः साल की कैद की सजा मिली थी।

– सुशीला दीदी ने कश्मीर बिल्डिंग वाली बम-फैक्ट्री में सिख लड़के के भेष में रहकर बम बनाना सीखा।

– बहावलपुर वाली कोठी में दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी क्रान्तिकारियों के साथ इस तरह रहती थीं कि वे लोग एक परिवार के सदस्य लगें और किसी को कोई सन्देह न हो। जिस दिन कोठी में बम-विस्फोट हुआ, दोनों को आपत्तिजनक गोला-बारूद से भरी हुई भारी अटैचियों के साथ वहां से जल्दी में भागना पड़ा था।

– सुशीला दीदी के नाम दो-दो वारंट थे। उन्हें पकड़वाने वाले के लिए इनाम भी घोषित था। फिर भी 1932 में हुए प्रतिबन्धित कांग्रेस के दिल्ली-अधिवेशन में फरार दीदी ने 'इन्दु' के नाम से एक महिला-टोली का नेतृत्व किया

और गिरफ्तार होकर जेल गयीं। जेल में इंदु नाम से वह छः महीने की पूरी अवधि भी काट आयीं, पर किसी ने उन्हें पहचाना नहीं।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम और क्रान्तिकारी-संघर्ष के इतिहास की पुस्तकें देखते-देखते ये टुकड़े-टुकड़े सन्दर्भ हर जगह मिले। एक अदद भाभी और एक अदद दीदी का नाम तब हजार-हजार सरफरोशों के लिए बलिदान की प्रेरणा बन गया था। भाभी यानी सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवतीचरण बोहरा की पत्नी दुर्गा भाभी। सौभाग्य से दुर्गा भाभी अभी हमारे बीच हैं। यों भी पत्रों में कई बार छपने से लोग उनके बारे में काफी कुछ जान गये हैं। पर यह दीदी कौन थीं? लाहौर, दिल्ली, कलकत्ता सभी जगह की क्रान्तिकारी-गतिविधियों से जुड़ी थीं, तो आखिर वह रहने वाली कहां की थीं? सभी क्रान्तिकारियों की दीदी वह कैसे बनीं?

ऐसे अनेक प्रश्न मन में घुमड़ रहे थे। दर्जनों पुस्तकें उलटने-पुलटने पर भी सिवाय इसके कुछ हाथ न लगता था कि वह कहां-कहां उपस्थित थीं और फिर फरार हो गयी थीं।

खोज करने पर पता चला कि बाद में दिल्ली में निवास करने वाली सुशीला मोहन ही सुशीला दीदी थीं। वारंट की अवधि समाप्त होने पर फरारी जीवन में अपने एक मददगार श्री मोहन के साथ विवाह करके वह स्थायी रूप से दिल्ली में बस गई थीं। पुरानी दिल्ली में स्त्रियों के लिए एक शिल्प-विद्यालय चलाने के साथ कांग्रेस का काम भी कर रही थीं। दिल्ली नगर निगम में कुछ समय वह 'एल्डरमैन' भी रहीं। उनके नाम पर एक सड़क है। कम्पनी बाग के पास

उनका एक 'स्टैच्यू' भी खड़ा किया गया है। फिर लोग उन्हें भूल कैसे गए?

दिल्ली में रहते हुए भी दिल्ली में खोई सुशीला दीदी को महीनों की भटकन के बाद मैंने कैसे खोजा, यह अपने आप में एक अलग मार्मिक कहानी है।

सुशीला दीदी का जन्म 5 मार्च, 1905 को गुजरात (पंजाब-अब पाकिस्तान) के एक गांव दत्तोचूहड़ में हुआ था। पिता डा. कर्मचंद फौज में मेडीकल अफसर थे। 1927 में वह सेवामुक्त हुए, तो उनके मन में महायुद्ध के विनाश से निराशा और अंग्रेजों के प्रति नफरत भरी थी। इसीलिए उन्होंने सरकार द्वारा दिए गए 'युद्ध-सेवा मैडल' और 'राय साहब' की उपाधि लेने से इन्कार कर दिया। वह लोकमान्य तिलक के प्रशंसक थे। एक चरित्रवान देशभक्त थे। इसलिए बच्चों को अंग्रेजी राज के स्कूलों में नहीं बल्कि उस समय स्थापित राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ाना चाहते थे।

सुशीला की मां उन्हें किशोरावस्था में छोड़ कर चल बसी थीं। पिता फौज में थे सो छोटे भाई-बहनों को पालने-पढ़ाने का भार घर की बड़ी लड़की होने के नाते सुशीला पर ही आया। सभी बच्चे गुजरांवाला में अपने एक डाक्टर चाचा के यहां रहते थे। जो बड़ा होता गया, पिता की इच्छानुसार उसे राष्ट्रीय विद्यालय भेज दिया गया। इस तरह दोनों भाई नेशनल स्कूल में और तीनों बहनें जालंधर कन्या विद्यालय में पढ़ने लगीं। छोटे भाई बहनों को स्कूल भेजने लायक बड़ा करने तक सुशीला घर पर रहीं, इसीलिए कन्या विद्यालय में उसकी अपनी शिक्षा अपनी छोटी बहनों के साथ ही देर से शुरू हुई। 1921-27 तक सुशीला कन्या विद्यालय में ही थीं।

इस राष्ट्रीय विद्यालय की भूतपूर्व प्रधानाचार्या कुमारी लज्जावती और उस समय की प्रधानाचार्या शन्नो देवी अपनी छात्राओं में राष्ट्रीय भावनाएं भरने के लिए प्रसिद्ध रही हैं। इसीलिए उनकी अनेक छात्राएं बाद में स्वतंत्रता-सेनानी बनीं। यहीं रह कर सुशीला ने कई राष्ट्रीय प्रेरणा-गीत लिखे। लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी पर उनका लिखा गीत 'गया ब्याहन आजादी लाडा भारत दा' छाप कर सारे पंजाब में बांटा गया था।

यहीं से 1926 में कुछ लड़कियों का एक दल जब देहरादून हिंदी साहित्य सम्मेलन में गया तो इनकी भेंट हुई लाहौर नेशनल कालेज से आए कुछ क्रांतिकारी विद्यार्थियों – भगत सिंह व साथियों से। भगवतीचरण वोहरा और उनकी पत्नी दुर्गा देवी से भी इनकी पहली भेंट वहीं हुई थी। इन लोगों ने जालंधर की इन लड़कियों को कुछ गुप्त परचे बांटने के लिए दिए थे। लौट कर अपनी सहपाठिनी लीला के साथ मिल कर सुशीला देवी ने बड़े सफल ढंग से ये परचे बांटे। कुछ परचे डाक से अधिकारियों के पास भी भेज दिए गए। इससे बड़ी सनसनी फैली, पर इनके नाम पर किसी को कोई संदेह नहीं हुआ।

1927 में सुशीलाजी बी.ए. की परीक्षा दे रही थीं कि 'काकोरी-केस' के क्रान्तिकारियों को फांसी दिए जाने की खबर सुन कर परीक्षा-हाल में बेहोश हो गईं। इन कैदियों को छुड़वाने के लिए तो उन्होंने अपनी शादी के लिए मां द्वारा रखा गया सारा सोना दान में दे दिया था। उनका प्रयत्न व्यर्थ गया था। इस दुख में उनका एक परचा भी रह गया। स्नातक बनने के बाद सुशीला एक वर्ष तक उसी विद्यालय में पढ़ाती

रहीं। साथ ही भगत सिंह, भगवतीचरण आदि के साथ काम भी करती रहीं।

भगवतीचरण का ग्वालमंडी वाला घर उन दिनों क्रांतिकारियों की गतिविधियों का केंद्र बना हुआ था। सुशीला वहां आती-जाती रहती थीं। पिता जब तक नौकरी से रिटायर नहीं हुए, सुशीला कालेज की छुट्टियों में भी घर नहीं जाती थीं कि पिता की नौकरी पर कोई आंच न आए। कुमारी लज्जावती कन्या विद्यालय से अवकाश लेकर लाला लाजपतराय के साथ काम कर रही थीं। उन्होंने ही सुशीला के लिए छुट्टियों में दुर्गा भाभी के घर रहने की व्यवस्था कर दी थी। यहीं उनका परिचय यशपाल, धनवंतरि आदि साथियों से भी हुआ। वह दल की एक सक्रिय सदस्या ही नहीं थीं, दुर्गा भाभी के साथ रहने के कारण सभी क्रांतिकारियों की दीदी भी बन गई थीं।

कलकत्ता के सेठ सर छज्जूराम चौधरी का परिवार भी राष्ट्रीय विचारधारा का था। अपनी लड़की सावित्री को मिशनरी स्कूल में न भेज कर उन्होंने जालंधर कन्या विद्यालय से एक ऐसी अध्यापिका की मांग की, जो उनके घर पर रह कर सावित्री को राष्ट्रीय संस्कार वाली शिक्षा दे सके। प्रधानाचार्या श्रीमती शन्नो देवी ने सुशीला दीदी को वहां भिजवा दिया। सुशीला दीदी ने अपनी योग्यता और स्वभाव से इस तरह उस परिवार का मन जीता कि सेठ छज्जूराम की पत्नी लक्ष्मी देवी भी उनकी भक्त बन गईं। लक्ष्मी देवी को विश्वास में लेकर ही सुशीला दीदी ने पहले 'मेरठ-केस' में फरार भगवतीचरण वोहरा को उस घर में ठहराया था, फिर 'लाहौर षड्यंत्र-केस' में फरार सरदार भगत सिंह को।

संयोग से सुशीला दीदी की वह परचे बांटने वाली सहपाठिनी लीला भी दंत-चिकित्सा की ट्रेनिंग लेने कलकत्ता पहुंच गई। श्री सत्यदेव विद्यालंकार और उनके भाई सुरेन्द्र विद्यालंकार भी उसी बस्ती में रहते थे। उनकी पत्नियों सुभद्रा देवी, कौशल्या देवी और अपनी सहपाठिनी लीला के साथ मिल कर सुशीला दीदी ने कलकत्ता में भी अपनी क्रांतिकारी महिला-टोली बना ली थी।

पहला काम इस टोली ने खुले रूप में किया। 1928 में 'साइमन कमीशन' के बहिष्कार का जुलूस लेकर श्री सुभाष चंद्र बोस निकले तो इस बस्ती के पास अचानक सुशीला दीदी के नेतृत्व में यह महिला-टोली भी हाथ में झंडे लिए, नारे लगाती, उनके साथ आ मिली। सुभाष बाबू देख कर दंग रह गए, खुश हुए, फिर इस टोली को जुलूस के आगे कर, स्वयं उनके पीछे-पीछे बढ़ चले। इस परिचय के बाद सुभाष बाबू भी उन्हें समय-समय पर मदद व प्रोत्साहन देते रहे।

भगवतीचरण और भगत सिंह को सेठ छज्जूराम के घर में शरण देने के साथ अगला सारा काम गुप्त रूप से क्रांतिकारी ढंग से हुआ। ब्रिटिश-पुलिस इनके पीछे थी। साथ रहना खतरे से खाली न था। इसलिए भगत सिंह को सुशीला दीदी के पास छोड़कर दुर्गा भाभी लाहौर लौट गई थीं। छापे की आशंका से कुछ दिन बाद भगत सिंह भी वहां से चले गए, भगवतीचरण भी। दिल्ली 'असेम्बली बम-कांड' के समय सब लोग दिल्ली में थे। सुशीला दीदी भी छुट्टी लेकर कलकत्ता से आ गई थीं। इधर असेम्बली में धमाका कर भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त गिरफ्तार हुए, उधर 'एक्शन' का नतीजा देखने भाभी और दीदी

तांगे पर बैठ कर निकलीं। सुखदेव पीछे-पीछे साइकिल पर थे। जब उन दोनों को खुले ट्रक में ले जाया गया, सब ने आंखों-आंखों में मौन बातचीत की। फिर ये तीनों जंतर-मंतर में बैठ कर अगली योजनाओं पर विचार करने लगे।

दीदी लिखती हैं : सुखदेव उस समय फूट-फूट कर रो उठा। भाभी, दीदी ने उसे धीरज बंधाया और चेतावनी दी कि इस तरह किसी को उन पर संदेह हो सकता है। दीदी और भाभी की मदद से ही तो सारा देश छान कर भी पुलिस भगत सिंह को नहीं पकड़ पाई थी। वह स्वयं ही असेम्बली में बम फेंक कर सामने आए थे। अब दीदी, भाभी का काम था जेल में अपने इन साथियों को फल, मिठाई के साथ गुप्त संदेश भेजना और उनके संदेश बाहर पहुंचाना। उन पर संदेह हुआ तो लीला, सुशीला की छोटी बहन शांता, कुमारी लज्जावती की छोटी बहन शिवा को उन लोगों की छद्म रिश्तेदार बना कर भेजा जाने लगा।

मुकदमे की पैरवी के लिए सुशीला दीदी की टोली ने कलकत्ता में नाटक खेल कर धन इकट्ठा किया। नाटक में छज्जूराम की लड़की सावित्री ही नायिका बनी। लक्ष्मी देवी ने भी धन देकर मदद की। 'गांधी इरविन समझौते' से भगत सिंह व साथियों की रिहाई की शर्त जुड़वाने के लिए गांधीजी से भी ये लोग मिले थे।

पर सुशीला दीदी ने कुछ अन्य रोमांचकारी कार्य भी किए। असेम्बली बम-कांड से पहले दिल्ली में वाइसराय की ट्रेन उड़ाने की योजना बनी थी। इस काम में मदद के लिए भगतवतीचरण ने सुशीला दीदी को ही बुलवाया था। विदेशी वेशभूषा व

मेकअप में सज-धज कर सुशीला दीदी वाइसराय को ले जाने वाली स्पेशल ट्रेन देखने गईं ताकि पूरी सूचनाएं ली जा सकें।

दीदी ने अनजान बनते हुए इंस्पेक्टर से अंग्रेजी में पूछताछ की, "हाय, यह सुंदर सी गाड़ी किस के लिए है? क्या मैं भीतर से इसे देख सकती हूं?"

इंस्पेक्टर ने कहा, "यह गाड़ी वायसराय की कोल्हापुर-यात्रा के लिए है।" यूरोपियन लेडी समझ कर और सुंदर चीजें देखने का उनका शौक जान कर उन्हें देखने की इजाजत दे दी।

दीदी ने भीतर घूम कर सारी गाड़ी देखी। फिर अनजान बन कर डाइनिंग कार के खानसामा से पूछा, "क्या वाइसराय यहीं खाना खाते हैं या अपने डिब्बे में मंगवाते हैं?"

इस बहाने उन्होंने वाइसराय के बैठने का डिब्बा भी देख लिया और उनकी सीट भी। अपना काम पूरा करके सुशीला देवी चली आईं और गाड़ी में वाइसराय का डिब्बा, गाड़ी के छूटने का समय आदि पूरी सूचनाएं भगवतीचरण को दे दीं। भगवती बाबू ने उन्हें अपनी सामान्य वेशभूषा में तुरंत कलकत्ता वापस भेज दिया ताकि 'एक्शन' के समय न वह वहां रहें, न उनके पहचाने जाने का खतरा रहे। नियत समय पर योजनानुसार तुगलकाबाद के पास वाइसराय की गाड़ी को उड़ाने के लिए धमाका हुआ, पर तीन डिब्बे तो उड़े, वाइसराय का डिब्बा बच गया और वाइराय भी।

अगली योजना भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को जेल से भगाने की थी। तब सुशीला दीदी अपनी छोटी बहन शांता

(विवाह के बाद शांता बलदेव) को अपनी जगह नौकरी पर लगा कर स्थाई रूप से कलकत्ता छोड़, लाहौर आ गईं। आगे कश्मीर बिल्डिंग में क्रांतिकारियों के साथ सिख लड़के के भेष में रह कर बम बनाना सीखने से लेकर बहावलपुर कोठी में बम-विस्फोट के बाद खतरनाक स्थितियों से गुजरने, भागने, फिर फरारी जीवन बिताने की उनकी सारी कहानी बहुत कष्टभरी और जोखिमभरी है।

कुछ दिन सुशीला दीदी ने दुर्गा भाभी व आजाद को अपनी सहेली सत्यवती के घर रखा। पुलिस पीछे थी। आजाद वहां से जल्दी चले गए। ये दोनों दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, कई जगहों पर छिपती हुई मारी-मारी फिरीं। कुछ दिन श्री पुरुषोत्तम दास टंडन के घर शरण ली। कुछ दिन कानपुर में लीला के 'मातृ मंदिर' में। यह मातृ मंदिर चन्द्रशेखर आजाद ने दल की इन बहनों और अस्त्र-शस्त्रों को छुपाने के लिए सुरक्षित स्थान के रूप में ही खुलवाया हुआ था।

फरारी के दिनों में ही सुशीला दीदी ने चांदनी चौक में हुए प्रतिबंधित कांग्रेस-अधिवेशन में 70 स्त्रियों की टोली के साथ हिस्सा लिया। मौके पर घुड़सवार पुलिस देख कर 30 स्त्रियां लौट गईं। शेष 40 घोड़ों की टांगों के नीचे से निकल-निकल कर चौक में जमा हो गईं। सुशीला दीदी ने पानी की हौदी पर खड़े होकर घोषणा-पत्र पढ़ा और गिरफ्तारी दे दी। मुकदमे में पूछने पर उन्होंने अपना नाम 'इंदुमति' बताया। इंदु नाम से ही 6 महीने की जेल काट आईं। किसी ने उन्हें पहचाना नहीं कि यह फरार सुशीला दीदी हैं, जिन्हें पकड़वाने वाले के लिए पुरस्कार घोषित है।

1929 में धन-संग्रह के लिए जालंधर जाने पर शन्नो देवी के घर उनके परिचित दिल्ली के एक इंजीनियर श्री श्याम मोहन से उनकी भेंट हुई थी। श्याम मोहन क्रांतिकारियों के समर्थक और सहायक थे। फरारी के जीवन में उन्होंने भी सुशीला दीदी को अपने घर में काफी दिनों तक शरण दी थी। अपने इन्हीं मददगार से जनवरी 1933 में उन्होंने विवाह किया, पर तब, जबकि उनके नाम लाहौर व दिल्ली से जारी दोनों वारंटों की अवधि समाप्त हो गई थी।

इसके बाद का उनका सारा कार्य कांग्रेस-कार्य और सामाजिक कार्य ही है। जीविका के लिए पुरानी दिल्ली के बल्लीमारन में दीदी जो शिल्प विद्यालय चला रही थीं, वह आज भी है, पर वर्तमान प्रिंसीपल तक उनके बारे में कुछ नहीं जानती थी, सिवाय इसके कि वहां लगा बड़ा सा चित्र सुशीला दीदी का है और वह इस स्कूल की संस्थापिका थीं। उनके साथ काम करने वाले वृद्ध चपरासी ने ही मुझे उनके बारे में सब बताया और संबंधित लोगों से मिलवाया।

सभी साथी या तो मारे गए थे या जेलों में थे। 27 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद में चन्द्रशेखर आजाद की शहादत के समय दीदी वहीं थीं। भगवतीचरण और भगत सिंह के बाद इस तीसरे भाई के छिन जाने पर वह स्वयं को बहुत अकेली व असहाय पा रही थीं। शायद तभी फरारी जीवन के बाद श्री श्याम मोहन से विवाह करने के लिए वह राजी हो गई थीं। लगातार तनाव झेलते, कष्ट उठाते हुए और अथक श्रम करते हुए दीदी का स्वास्थ्य बिगड़ गया था। फिर भी वह अंत तक चुपचाप काम में लगी रहीं। फिर 13 जनवरी, 1963 को चुपचाप ही इस संसार से चली गईं।

उनकी मृत्यु पर साथी क्रांतिकारी वैशंपायन ने कहा, "दीदी, तुम्हें शत-शत प्रणाम! तुम्हारी पहचान अभी नहीं हुई, बाद में होगी।" इस सत्यनिष्ठ, कर्मनिष्ठ नारी को चुपचाप काम करते देखने वाले उन्हें 'बर्फ से ढका, सुलगता हुआ अंगारा' कहते थे। आज लोग उन्हें भले ही भूल चुके हों, समय आएगा. जब उनके काम की पहचान अवश्य होगी।

उत्तर प्रदेश, दिल्ली व पंजाब में सक्रिय-चन्द्रशेखर आजाद व भगत सिंह की सहायक अन्य क्रांतिकारी महिलाएं

'बनारस बम-केस' में गिरफ्तार

मृणालिनी देवी

श्री सुविमल राय की पत्नी मृणालिनी देवी ने 1931 में अपने पति के साथ क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लिया था। 'सांडर्स वध' के बाद जब 'केन्द्रीय असेम्बली बम-कांड' का भी धमाका हुआ तो पंजाब से बंगाल तक, मध्य व दक्षिण भारत तक भी, क्रांतिकारियों का व उनके गुप्त अड्डों का पता लगाने के लिए पुलिस की सरगर्मियां बढ़ गई थीं। तभी तलाशियों के इस दौर में बनारस में इनके घर से भी बम बरामद हुए थे और जुर्म में श्री सुविमल राय और मृणालिनी देवी पकड़ लिए गए थे। पति-पत्नी दोनों को 'बनारस बम-कांड' के मुकदमे में सात-सात साल की कड़ी कैद की सजा सुनाई गई थी।

आजाद की साथी

सुनीति देवी

सुनीति देवी कानपुर में श्री चन्द्रशेखर आजाद के दल में सक्रिय थीं। उनके कागज-पत्र, अस्त्र-शस्त्र इधर से इधर पहुंचाने, छिपाने, आश्रय-स्थल जुटाने आदि का काम उन्होंने बखूबी संभाला और किसी को कानोंकान खबर न होने दी। आजाद प्रायः इन्हीं के घर ठहरते थे। पर आजाद की मृत्यु के बाद देर से उनके बारे में पुलिस को कोई सुराग मिला तो 1934 में उन्हें पकड़ लिया गया। नेता की मृत्यु हो जाने पर भी कुछ प्रमाणों के आधार पर इन्हें 1934 से 1937 तक जेल की सजा काटनी पड़ी।

यातनाओं की शिकार, सुनीता देवी की पुत्री

माया देवी

भयंकर दमनकारी कार्यवाहियों के बाद दल का लगभग सफाया कर दिए जाने पर भी न केवल क्रांतिकारी गतिविधियों को जारी रखा गया था, कुछ महिलाएं भी बेखौफ उनमें सक्रिय थीं, इसका पता चलता है सुनीति देवी की पुत्री माया देवी की बाद में गिरफ्तारी से। सुनीति देवी को जेल भेज दिए जाने पर उनकी अनुपस्थिति में एक दिन उनकी पुत्री माया देवी भी डायनामाइट के साथ पकड़ी गई और उसे 'आर्म्स एक्ट' में ५ साल की कड़ी कैद की सजा मिली। जेल में माया देवी को इतनी यातानाएं दी गईं कि इससे उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। सुनीति देवी की इस बहादुर बेटी के बारे में अन्य विवरण नहीं मिल पाए, सिवाय इसके कि वह बहुमुखी व्यक्तित्व-सम्पन्न महिला थीं। तेजस्विनी और बुद्धिमति। पर जेल में स्वास्थ्य खोकर क्षय रोग की शिकार हो गई थीं।

आजाद की साथी श्री मुसद्दी की पत्नी

श्रीदेवी मुसद्दी

श्री रामचन्द्र मुसद्दी की पत्नी श्रीदेवी मुसद्दी के बारे में एक बड़ी साहसिक और दिलचस्प कहानी प्रकाश में आई है। इलाहाबाद में कटरा स्थित उनके घर में एक दिन चन्द्रशेखर आजाद छिपे थे कि बाहर से तलाशी के लिए पुलिस के आने की खबर मिली। आजाद की इस भाभी ने तुरंत आजाद को नौकर की पोशाक पहनाई और एक बड़ी सी परात उनके सिर पर उठवा कर उन्हें बाहर निकाल ले गईं। उस दिन संयोग से रक्षा-बंधन का दिन था। घर में परिवार की और स्त्रियां भी उपस्थित थीं। जैसे ही पुलिस ने भीतर प्रवेश किया, सजी-धजी श्रीदेवी मुसद्दी ने आजाद को नौकर के रूप में संबोधित कर डांट लगाई, "जानते नहीं, आज रक्षाबंधन है, मुझे भाई के घर जाने में देर हो रही है। जल्दी उठा परात और चल।" और पुलिस को शिनाख्त का मौका दिए बिना वह जल्दी से परात उठाए नौकर के साथ बाहर निकल गईं। पीछे घर में तलाशी होती रही। पर तब पुलिस को वहां क्या मिलने वाला था? सुना गया, यह महिला इसी तरह क्रांतिकारियों की लगातार मदद करती रहती थीं।

सुशीला दीदी की बहनें

शान्ता और शकुन्तला

शकुन्तला अपनी बी.ए. की पढ़ाई बीच में ही छोड़ कर दीदी की प्रेरणा से उनके काम में सहायता करने लगी थी। उनके कागज-पत्र इधर-उधर पहुंचाना, जहां दीदी के पकड़े जाने का अंदेशा हो, उस जगह दीदी द्वारा अपनी इस बहन को भेजना, जेल में भगत सिंह व साथियों से मिलकर संदेश लाना-ले-जाना आदि कार्यों में ही उनकी सहायक भूमिका रही।

शांता को दीदी ने तब कलकत्ता बुलाया था, जब दीदी सुशीला को कलकत्ता की अपनी नौकरी छोड़, पूरा समय क्रांतिकारी-कार्यों में लगाने के लिए दिल्ली बुला लिया गया था। इसके बाद ही वह दिल्ली, लाहौर, कानपुर, इलाहाबाद, कलकत्ता आने-जाने व इन केन्द्रों के बीच सम्पर्क-सूत्र बनाए रख, क्रांति-संचालन और फिर फरारी जीवन बिताने के लिए स्वतंत्र हो सकी थीं। शांता को कलकत्ता की नौकरी में अपने बदले छोड़ने के पीछे सुशीला दीदी का एक अन्य उद्देश्य भी था – वह था, उनके द्वारा एक अनाथ शिशु को गोद लिए जाने पर उसकी देखभाल की कठिनाई। निश्चय ही या तो वह उस गोद लिए गरीब बच्चे को छोड़तीं या उसके लिए क्रांतिकारी गुप्त गतिविधियां। जैसे दुर्गा भाभी के लिए उनका पुत्र शची फरारी जीवन में संकट का कारण बन गया था, उसी तरह सुशीला

दीदी के लिए भी यह बच्चा। तो शांता ने यह जिम्मेदारी लेकर न केवल उन्हें इस चिन्ता से मुक्त किया, उनकी आर्थिक सहायता के लिए उनकी यह नौकरी भी बनाए रखी। इसके अलावा भी शांता (बाद में क्रांतिकारी बलदेव से विवाह कर श्रीमती शांता बलदेव) दीदी के व उनके क्रांतिकारी साथियों की सहायता के लिए हर समय तैयार रहती थीं और इस हेतु कलकत्ता से दिल्ली व लाहौर की यात्राएं भी करती थीं।

सुशीला दीदी की संरक्षिका

लक्ष्मी देवी और सावित्री

यहां सुशीला दीदी की संरक्षिका सेठानी लक्ष्मी देवी व उनकी पुत्री कुमारी सावित्री की सहायक भूमिका भी उल्लेखनीय है। दीदी की कलकत्ता की नौकरी सेठ सर छज्जूराम चौधरी की किशोरी पुत्री सावित्री को पढ़ाने के लिए आवासीय अध्यापिका अथवा 'गवर्नेस' के रूप में थी और दीदी उन्हीं की कोठी में रहती थीं। अपने कलकत्ता-निवास के समय फरार भगवतीचरण वोहरा को और फिर भगत सिंह को दीदी ने पहले होटल में ही ठहराया था और अपनी मालकिन माता लक्ष्मी देवी को विश्वास में लेने तथा उनका संरक्षण प्रदान करने का आश्वासन पाकर ही भगत सिंह को कोठी पर सुरक्षित रूप में टिकाया था। सेठानी लक्ष्मी देवी का क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति रखना और बात है, अपने 'सर' की उपाधि प्राप्त पति सेठ छज्जूराम व उनके व्यवसाय पर आंच आने का खतरा उठा कर भी, उन्हें बिना बताए, भगत सिंह को अपने घर में ठहराना और। निश्चय ही उस समय यह उनके लिए बड़े जोखिम और साहस का काम था। पर उन्होंने न केवल सुशीला दीदी की इस मामले में सहायता की, उन्हें पूरे संरक्षण का आश्वासन भी दिया और अपनी पुत्री सावित्री को क्रांतिकारी सहायता-फंड एकत्रित करने के लिए खेले गए नाटक में

अभिनय करने की अनुमति भी प्रदान की। दीदी की शिष्या कुमारी सावित्री भी अपनी मां की अनुमति से, अपने समाज की आलोचनाओं के बावजूद, दीदी द्वारा आयोजित नाटक में अभिनय करने, धनी समाज में नाटक के अधिक से अधिक टिकट बिकवा कर सहायता-कोष में हर संभव तरीके से धन जुटाने में सहायक हुई। इस तरह प्रत्यक्ष भाग न लेकर भी इन मां-बेटी ने दीदी के माध्यम से क्रांतिकारियों की जो सहायता की, उसके लिए दीदी सुशीला के साथ इनका नाम भी बड़े आदर-भाव से लिया जाता है।

लाला पिंडी दास की लड़कियां

लीला और स्वदेश

लाहौर के प्रसिद्ध नेता लाला पिंडी दास की दो पुत्रियां लीला और स्वदेश भी भगत सिंह और आजाद मंडली के काम में सहायता कर रही थीं। इनमें से लीला का काम तो सुशीला दीदी के काम से कुछ ही कम माना जाना चाहिए। सुशीला दीदी और लीला दोनों जालंधर कन्या महाविद्यालय की पुरानी सहपाठिनियां थीं। 1926 में देहरादून में हुए 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' में विद्यालय की ओर से भेजी गई कुछ छात्राओं की टोली में वे तब भी साथ थीं, जब पहले-पहल इन दोनों की भेंट 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन ऐसोसिएशन' के सदस्यों – भगत सिंह व साथियों से देहरादून में हुई। लीला के भाई बलदेव ने दोनों का परिचय भगत सिंह से कराया था और बताया था कि एसोसिएशन की 'आर्मी' का गठन किया जा रहा है और दोनों को उसकी गतिविधियों में भाग लेना है। भगवतीचरण व दुर्गा भाभी से भी उनकी पहली भेंट यहीं हुई थी और उन्होंने इन दोनों सहेलियों को नियत तिथि पर जालंधर में बांटने के लिए गुप्त परचे दिए थे। दोनों ने निर्धारित समय पर इस काम को बखूबी अंजाम दिया था और डाक से मुख्य अधिकारियों के पास भी परचे भिजवा दिए थे। इससे बड़ी सनसनी फैली थी, पर किसी को पता नहीं चला था कि यह काम किसका था।

इसके बाद जब सुशीला दीदी कलकत्ता में अध्यापन की अपनी नौकरी कर रही थीं, संयोग से लीला भी दंत-चिकित्सा की डिग्री लेने के लिए कलकत्ता पहुंच गई थी और क्रांति-कार्य के लिए फिर दोनों सहेलियां मिल गई थीं। कलकत्ता में दीदी के कार्य में लीला पूरी तरह सहायक थी। अपनी पढ़ाई पूरी करके आने पर भी लीला ने दंत-चिकित्सक की नौकरी या प्रेक्टिस करने के बजाए, नेता चन्द्रशेखर आजाद के आदेश पर काम करना व क्रांतिकरियों के काम में मदद करना अधिक पसंद किया। 'चांद' के सम्पादक से कह कर आजाद ने इलाहाबाद में एक 'मातृ मंदिर' खुलवा दिया था और लीला को इसके अधिष्ठाता पद पर रखवा दिया था। बाद में जब सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी को उनके फरारी जीवन में सुरक्षित जगह रखने की जरूरत पड़ी, तो वे दोनों भी यहां लीला के पास कुछ समय रही थीं। पर तीनों का एक साथ रहना खतरे से खाली न था, तो समय पर सुशीला व दुर्गा को वहां से अन्यत्र भेज दिया गया था। लीला के इस स्कूल में आजाद व साथियों के समय-समय पर ठहरने व अस्त्र-शस्त्र रखने के लिए सुरक्षित जगह बनाई गई थी। बाद में कुछ मुखबिरों द्वारा खतरा उत्पन्न किए जाने पर अस्त्र-शस्त्र के साथ लीला को भी वहां से हटाना पड़ा था।

एक बार लाहौर में छद्म नाम व भेष में सुशीला दीदी के भगत सिंह से मिल कर आने के बाद जब पुलिस को उनके बारे में संदेह हुआ तो दीदी की तलाश में लाला पिंडी दास और कुमारी लज्जावती के घर पुलिस ने छापा भी मारा था। गनीमत यही हुई कि पुलिस के तलाशी लेकर जाने के थोड़ी देर बाद ही सुशीला दीदी वहां पहुंची थीं। फिर पकड़े जाने के भय से

उन्होंने तुरंत वह घर छोड़ दिया था। इससे मालूम होता है कि लीला की अनुपस्थिति में भी सुशीला उनके लाहौर वाले घर में जाकर ठहरती थीं। लाहौर में दुर्गा भाभी का घर छिन जाने पर लीला का घर और कुमारी लज्जावती का घर ही सुशीला का आश्रय-स्थल थे। आजाद व साथियों के दल के तितर-बितर हो जाने के बाद लीला पकड़ी गई कि नहीं; पकड़ी गई तो उसे कितनी सजा मिली या उसके बाद उसका जीवन कैसा रहा, इस बारे में विवरण नहीं मिले।

लीला की छोटी बहन स्वदेश का तो बहन के काम में सहायता, संदेश लाना-ले-जाना और फंड-एकत्र करने में सहयोग का ही उल्लेख मिलता है।

जालंधर कन्या महाविद्यालय की प्रधानाचार्या

कुमारी लज्जावती और शन्नो देवी

आजादी की लड़ाई के उस युग में, जब सरकारी स्कूलों-कालेजों का बहिष्कार कर सैकड़ों-हजारों छात्र-छात्राएं अपनी पढ़ाई छोड़ कर बाहर आ गए थे, तो देशभक्त परिवारों के बच्चे राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयों में ही पढ़ने भेजे जाते थे। ऐसे सोद्देश्य स्थापित शिक्षण संस्थानों में लाहौर के नेशनल कालेज, अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ और जालंधर के कन्या महाविद्यालय के नाम प्रमुख रूप से लिए जा सकते हैं, जिनकी स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि जालंधर कन्या महाविद्यालय की स्थापना नवजागरण काल में आर्यसमाजी विचारधारा के प्रसार और लड़कियों को तदनुरूप संस्कारी शिक्षा देने के लिए एक कन्या गुरुकुल की तरह की गई थी, पर स्वतंत्रता-संग्राम में विद्यालय की छात्राओं में राष्ट्रीय भावनाएं भरने और उन्हें देश की आजादी की लड़ाई के लिए तैयार करने में भी इस संस्थान की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है।

कुमारी लज्जावती इसी कन्या महाविद्यालय की प्रधानाचार्या रहीं, जिन्होंने छात्राओं में स्वदेशी भावनाएं भरने, उन्हें देशभक्त बनाने और देश के लिए समय पर सब

कुछ बलिदान करने के लिए तैयार किया। 'जलियांवाला गोली-कांड' के बाद कुमारी लज्जावती अपने आप को अप्रत्यक्ष सेवाओं तक सीमित न रख विद्यालय की नौकरी छोड़, लाला लाजपतराय के साथ काम करने के लिए लाहौर चली गई थीं। लाला जी के साथ गरम दल की कार्यकर्त्री के रूप में कार्य करते हुए उनकी सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ भी निरन्तर बनी रही। भगत सिह, सुखदेव आदि सभी क्रांतिकारी उनसे समय-समय पर मिलते रहे, उनके यहां आश्रय पाते रहे, उनके द्वारा एकत्रित-फंड से भी लाभान्वित होते रहे। अपनी महिला साथियों की तलाश और प्रशिक्षण के लिए भी वे उन पर निर्भर रहते रहे। जब खतरे का अनुभव होता, कुमारी लज्जावती उनके लिए अन्यत्र सुरक्षित स्थल भी जुटातीं। भगत सिह व साथियों के मुकदमे के दौरान उन्होंने न केवल जेल में उनसे मिलने के लिए अपनी छोटी बहन शिवा का सहयोग लिया, फंड जुटाने के लिए भी बहुत श्रम किया और उन्हें बचाने की योजनाओं में अपना भरपूर सहयोग प्रदान किया। उनकी रिहाई के लिए वह गांधीजी से भी जा कर मिली थीं। दिल्ली निवासी कालिंदी कालेज की अवकाशप्राप्त प्रिंसिपल, कुमारी लज्जावती की छोटी बहन श्रीमती शिवा दुआ बताती हैं कि वह शिवकौर के नाम से भगत सिह की एक रिश्ते की बहन बन कर उनसे मिलने जेल व अदालत जाया करती थीं और यह सारी व्यवस्था उनकी बड़ी बहन कुमारी लज्जावती ही करती थीं। भगत सिह आदि की रिहाई के लिए कुमारी लज्जावती के गांधीजी से मिलने की बात भी शिवा जी ने ही बताई।

लज्जावती के बाद जालंधर कन्या महाविद्यालय की

प्रधानाचार्या का काम शन्नो देवी ने संभाला था। सुशीला दीदी उनकी ही शिष्या रहीं। लीला व उनकी बहनें भी। दिल्ली में क्रांतिकारियों के सहायक, उनके आश्रयदाता, फरारी जीवन में सुशीला दीदी के संरक्षक, साथी व बाद में पति श्री श्याम मोहन से सुशीला की भेंट एक अवसर पर शन्नो देवी ने ही कराई थी और दिल्ली में उन्हें यह काम सौंपा था। इस तरह शन्नो देवीजी का भी वही काम रहा, कुमारी लज्जावती जिसकी पूर्व परंपरा वहां छोड़ गई थीं — छात्राओं में भारतीय संस्कृति व राष्ट्रीयता के संस्कार भरना और उन्हें देश की आजादी की लड़ाई के लिए तैयार करना। 1910-16 तक उन्होंने उसी विद्यालय से शिक्षा पाई थी और 1920 में कुमारी लज्जावती के लाला लाजपतराय के साथ सक्रिय हो जाने पर विद्यालय छोड़ने के बाद वहीं प्रधानाचार्या बनी थीं।

पंजाब के राजनैतिक जीवन से शन्नो देवी का भी शुरू से ही संपर्क रहा था। भगत सिंह के पिता व उनके पिता के बीच निकट संपर्क रहने से भगत सिंह बचपन से उनके संपर्क में थे और अक्सर उनके यहां आते थे। सुशीला और भगवतीचरण को निकट लाने व भगत सिंह के साथियों: धनवंतरि, यशपाल आदि से उनका परिचय करा, सुशीला को उनके काम में सहायक बनाने के पीछे शन्नो देवी का प्रमुख हाथ रहा। घर में मां के न रहने से व सुशीला के कारण उनके पिता की नौकरी पर आंच न आए, इसलिए सुशीला दीदी छुट्टियों में घर नहीं आ पाती थीं, तो शन्नो देवी और कुमारी लज्जावती ने सुशीला को छुट्टियों में भगवतीचरण के घर रहने की व्यवस्था करवा दी थी। दुर्गा भाभी लिखती हैं, "सुशीला के रूप में मुझे सगी ननद

से भी बढ़ कर ननद-सहेली मिली और मेरा अकेलापन बंट गया।" इसके बाद दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी के साथ रहने, साथ काम करने और दोनों की जगत भाभी व जगत दीदी के रूप में पहचाने जाने के पीछे यही कहानी है। क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास इन्हें भाभी और दीदी के रूप में ही अधिक याद रखता है।

शन्नो देवी जब-जब कलकत्ता जाती थीं, उन्हें ठहराने का प्रबंध भी सुशीला दीदी वहीं अपने निवास वाली कोठी में ही करती थीं। भगत सिंह जब वहां थे, उन्हीं दिनों शन्नो देवी भी वहां पहुंची थीं। वहीं उनकी भगवतीचरण और भगत सिंह से भेंट हुई और उन्होंने उनकी आगामी योजनाओं में सलाह-मशविरा दिया। वह लिखती हैं, "भगत सिंह को तब हम 'हरि' नाम से बुलाते थे।" सेठानी लक्ष्मी देवी की भी उन्होंने बड़ी तारीफ की है। उनके संस्मरण से यह भी पता चलता है कि कलकत्ता में अधिवेशन के समय अध्यक्ष श्री मोतीलाल नेहरू की गाड़ी रोक कर तब उसी बस्ती में रह रहे श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने दीदी और अपनी पत्नी सुभद्रा से उनका तिलक करवाया था। ... आजादी के बाद शन्नो देवी पंजाब व हरियाणाकी एक प्रमुख सामाजिक, राजनैतिक नेत्री के रूप में जिस तरह उभरीं और हरियाणा में मंत्री भी बनीं, उनके इस रूप से सभी परिचित हैं। पर क्रांतिकारियों की सहायता और क्रांतिकारी युवतियों के निर्माण की उनकी इस भूमिका को शायद बहुत कम लोग जानते होंगे, इसलिए यहां उसी का उल्लेख किया जा रहा है।

अन्य उल्लेखनीय नाम

— क्रांतिकारियों के काम में साथ देने के लिए घर से भाग कर आई प्रेमवती, जिसे स्वदेश ने दुर्गा भाभी के घर में शरण दिलाई।

— डा. सुशीला, जो क्रांतिकारियों के साथ सहानुभूति रखने के कारण पति से डांट खाती थीं, इसलिए चोरी छिपे उनकी सहायता करती थीं। कुछ दिन उन्होंने खुले तौर पर गतिर्विधियों में भाग भी लिया। पर शीघ्र ही अपने एक प्रसव में उनकी मृत्यु हो गई थी।

— श्री यशपाल की पत्नी प्रकाशवती पाल, जो तब प्रकाशो नाम से प्रसिद्ध थीं, दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी के साथ वह भी कई गतिर्विधियों में शामिल थीं। उनके साथ बहावलपुर वाली कोठी में भी रही थीं, जब वहां बम बनाए जाते थे। कोठी में बम-विस्फोट के बाद उनके साथ वह भी फरार हो गई थीं। पर भाभी और दीदी की तरह इनके द्वारा किसी महत्वूर्ण 'एक्शन' में शामिल होने अथवा कोई जिम्मेदारीपूर्ण व जोखिमभरा दायित्व संभालने का उल्लेख नहीं मिलता। इसके अलावा, उनका नाम कुछ विवादों में उलझ कर इतना चर्चित हुआ कि उस समय के क्रांतिकारी और बाद में सुविख्यात साहित्यकार-कथाकार के साथ उनके प्रेम-आख्यान से उनका जीवन क्रांतिकारी-जीवन से अधिक एक औपन्यासिक आख्यान बन कर रह गया। यशपालजी के 'सिंहावलोकन' की बात से हट कर, उनके कार्य के बारे में उन्हें कहीं श्रेय नहीं दिया गया। ... पर प्रेमवती की तरह प्रकाशो के

उदाहरण से भी सिद्ध है कि क्रांतिकारियों के आकर्षण में बंध कर किस प्रकार सुंदर, संभ्रान्त, सुशिक्षित नवयुवतियां उन दिनों उनके साथ काम करने के लिए घर-परिवार छोड़ कर आ जाती थीं और सभी तरह के खतरे उठाने के लिए तैयार हो जाती थीं।

(ग) नगालैंड का अकेला सशक्त नाम

नगालैंड की 'जॉन आफ आर्क'

रानी गिडालू

स्वतंत्रता-सेनानी महिलाओं में सर्वाधिक लम्बी जेल-सजा भुगतने वाली नगालैंड की रानी गिडालू ने जब 1932 में अंग्रेजों के खिलाफ मुक्ति-युद्ध छेड़ा था, तब वह केवल 17 वर्षीय किशोरी थीं और जब 1947 में देश की आजादी के बाद वह रिहा की गयीं तो उनकी पूरी जवानी और सुन्दरता जेल के फौलादी सींखचों की भेंट चढ़ चुकी थी।

1937 में जब देश में प्रांतीय स्वशासन लागू हुआ तो सभी बड़े नेता जेल से छूटकर बाहर आ गए थे। तब गांधीजी व अन्य नेताओं के प्रयत्न से लंबी सजा भुगतने वाली लगभग सभी क्रांतिकारी युवतियां भी जेल से छूट गई थीं। नहीं छूटीं, तो बस रानी गिडालू। श्री नेहरू ने जेल में उनसे भेंट की थी और ब्रिटिश अधिकारियों से पत्र-व्यवहार कर उनकी रिहाई के लिए भी जोरदार प्रयत्न किया था। श्री नेहरू ने 'अलीपुर कांग्रेस' में रानी गिडालू की मुक्ति के लिए एक प्रस्ताव भी पास करवाया था – पर व्यर्थ।

उस समय की श्री नेहरू के हृदय की पीड़ा का अनुमान इन शब्दों से लगाया जा सकता है "उस नन्हीं बहादुर लड़की ने

अपनी देशभक्ति के जोश में एक विशाल साम्राज्य को चुनौती दी थी। मगर उसे कितनी यातना और कितनी घुटन सहनी पड़ रही है। पहाड़ की ताजी खुशनुमा हवाओं में अब वह कभी नहीं आ सकेगी। पहाड़ की ढलानों और जंगली कुंजों में अब वह कभी आजादी से नहीं घूम सकेगी। यह छोटी आजाद चिड़िया-सी रानी गिडालू चुपचाप बैठी रहती होगी। अंधेरे में कैद। छोटी सी कोठरी में अकेले, बिल्कुल अकेले। अपनी यातना को चुपचाप झेलते हुए। अफसोस यह है कि हिन्दुस्तान अपनी इस बहादुर बिटिया के बारे में जानता तक नहीं। भारत की यह बहादुर बेटी नगा पहाड़ियों की वह पवित्र सन्तान है, जिसकी सांस-सांस में पहाड़ी हवाओं की आजादी बसी हुई है। उसके प्रदेश के लोग उसे प्यार, इज्जत और दुख से याद कर रहे हैं। एक दिन आएगा, जब सारा हिन्दुस्तान उसे याद करेगा, उसे इज्जत बख्शेगा और कैदखाने के दरवाजे खोलकर उसे बाहर ले आएगा।"

पर श्री नेहरू की इस मार्मिक अपील का भी अंग्रेज शासकों पर कोई असर नहीं हुआ। उसे रिहा करने के बजाय वाइसराय ने रानी गिडालू की रिहाई के बारे में असम असेम्बली में प्रश्न पूछने तक की मनाही कर दी। ऐसा था, रानी गिडालू का अंग्रेजों पर आतंक। वे उसे खतरनाक विद्रोही समझते थे और उसे रिहा कर के कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहते थे। रानी गिडालू स्वयं तो अंग्रेजों के लिए भयानक शत्रु थी हीं, पर उनके पीछे उनके हजारों श्रद्धालु विद्रोही नगाओं की जो बड़ी क्रान्ति-सेना थी, वह अंग्रेजों को और भयभीत करती थीं। अपने क्षेत्र में रानी गिडालू का प्रभाव था ही ऐसा। उनके

छुए जल की एक बोतल उन दिनों दस रुपये में बिकती थी, क्योंकि नगाओं की मान्यता थी कि इस जल से रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है।

रानी गिडालू का यह प्रभाव अब भी अपने अनुयायियों पर कम नहीं हुआ है। वह आज भी अपने कबीले की बहुत प्रभावशाली नेता हैं।

रानी गिडालू का जन्म 26 जनवरी, 1915 को नगालैंड के घने जंगलों के बीच एक सुदूर अंचल लांगकाओ में हुआ। उनके पिता नगाओं के पुरोहित थे। रांगमेई आदिम जाति के गर्वीले पामेई कबीले की वही एकमात्र लड़की थी, जिसने मिशन स्कूल में शिक्षा पाई थी। 1931 में जब वह 9वीं कक्षा में पढ़ रही थी, उसके 13 वर्षीय छोटे भाई जादोनांग ने अपने को अपने विशेष नगा-दल का नेता घोषित कर अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध अपने क्षेत्र की स्वतंत्रता का बिगुल बजा दिया। एक अंग्रेज को मारने के अपराध में उसे फांसी हो गई। भाई की मौत के बाद 17 वर्षीय गिडालू उस कबीले की रानी बनी।

रानी गिडालू ने भी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध संग्राम छेड़ दिया। उनके पास गुरिल्ला-युद्ध में पारंगत चार हजार खूंखार नगा अनुयायियों की वालंटियर सेना थी। रानी व इन गुरिल्लाओं ने कई महीनों तक अंग्रेजों के छक्के छुड़ाये। असम रायफल से उनकी कई बार मुठभेड़ें हुईं। लूटमार करके ये घने जंगलों में जा छिपते और पकड़ में न आते। रानी ने घोषित किया -- "या तो अंग्रेज जीतेंगे, या मैं।"

कुछ महीने कठिन संघर्ष में बीते। फिर 17 अक्तूबर, 1932 की सुबह ब्रिटिश सेना ने अचानक हमला कर दिया।

रानी गिडालू पकड़ ली गयीं। सैनिक घेराव में घिर कर उन्हें मजबूरी में आत्मसमर्पण करना पड़ा। रानी के शब्दों में, "मैं उनके लिए जंगली जानवर के समान थी। इसलिए एक मजबूत रस्सी मेरी कमर में बांधी गयी। दूसरे दिन कोहिमा में मेरे दूसरे छोटे भाई ख्युसीनांग की क्रूरता से पिटाई की गयी। कड़कती ठंड में हमारे कपड़े छीन कर हमें रात भर ठिठुरने के लिए छोड़ दिया गया। पर मैंने धीरज नहीं खोया। **इम्फाल जेल में रखकर रानी पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा दे दी गई। देश आजाद होने के बाद ही वह रिहा हुईं।**

रिहाई के बाद कुछ समय उन्होंने अवकाश के रूप में बिताया। फिर अपने क्षेत्र में अपने कबीले के लोगों की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं के समाधान में जुट गईं।

भारत की आजादी की 25वीं वर्षगांठ पर राजधानी में लालकिले के दीवाने -आम में अनेक स्वतन्त्रता-सेनानियों का सम्मान किया गया था। इस अवसर पर अपनी परंपरागत रंगबिरंगी पोशाक पहने नगालैंड की एकमात्र स्वतंत्रता-सेनानी, 57 वर्षीया महिला ने उठकर जब 'ताम्र-पत्र' लिया, तो सारा हाल हर्ष-विभोर तालियों से गूंज उठा। यह महिला वही रानी गिडालू थीं, जिन्हें नगालैंड की 'जॉन आफ आर्क' कहा जाता है।

तीसरा दौर
(1942)
प्रमुख क्रांतिकारी नाम

1942 की हीरोइन

अरुणा आसफअली

1942 के उग्र-आन्दोलन में जिन महिलाओं ने उभर कर राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की, अरुणा आसफअली का नाम उनमें सर्वप्रथम लिया जाता है। अपने सशक्त, सफल भूमिगत आन्दोलन के कारण उन्हे '1942 की हीरोइन' भी कहा गया। इसके पूर्व 1930 के 'असहयोग-आन्दोलन' और 1941 के 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' में भी वह जेल गई थीं। पर राष्ट्रीय नेताओं की प्रथम पंक्ति में उनका नाम 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान ही चमका।

एक सम्मानित बंगाली परिवार से संबंधित अरुणा का जन्म 1909 में हुआ। शिक्षा लाहौर और नैनीताल के पब्लिक स्कूलों में हुई। अध्यापन-कार्य उन्होंने कलकत्ता में शुरू किया। उन्हीं दिनों 1928 में अध्यापन छोड़, देशभक्त वकील श्री एम. आसफअली से विवाह करके अरुणा गांगुली से अरुणा आसफअली कहलाईं। श्री आसफअली आयु में उनसे 23 वर्ष

बड़े थे, उस पर मुस्लिम अरुणाजी को अपने समाज के जबर्दस्त विरोध का सामना करना पड़ा। पर हिन्दू-मुस्लिम विवाह उन दिनों राष्ट्रीय एकता प्रदर्शित करने के लिए काफी तादाद में किए जा रहे थे। इसलिए कांग्रेसी क्षेत्रों में उनके इस कदम का स्वागत ही हुआ। राजनीति में भाग लेते हुए उन्हें पति के साथ जैसे एक राजनीतिक पथ-प्रदर्शक भी मिल गया था।

1930 के 'नमक सत्याग्रह' के समय ही वह आजादी की लड़ाई की एक अग्रणी नेत्री के रूप में सामने आ गई थीं। जुलूसों का नेतृत्व करना, सभाओं में भाषण देना आदि उनकी गतिविधियां देखकर दिल्ली के चीफ कमिश्नर ने उन्हें चेतावनी दी कि वह अपने आप को इन हलचलों से अलग रखें। पर अरुणा आसफअली ने इंकार कर दिया और बदले में एक वर्ष के लिए जेल जाना पसंद किया। कुछ महीनों बाद 'गांधी-इरविन समझौते' के समय जब अन्य नेता रिहा कर दिए गए थे, खतरनाक व्यक्ति समझ कर अरुणाजी को तब भी नहीं छोड़ा गया। पर गांधीजी के हस्तक्षेप, जेल के अन्य साथियों का अरुणाजी की रिहाई बिना अपनी रिहाई से इंकार तथा जनमत के दबाव को देखकर सरकार को उन्हें रिहा करना ही पड़ा।

1932 में सत्याग्रह करके अरुणाजी फिर जेल गईं। इस बार उन्हें दो सौ रुपये जुर्माने के साथ छः महीने की सजा मिली। जुर्माना अदा न करने पर पुलिस उनकी कीमती साड़ियां उठा ले गई। दिल्ली जेल में कैदियों के साथ दुर्व्यवहार के विरोध में उन्होंने भूख-हड़ताल की। इस पर अधिकारियों ने

उनकी मांगें तो मान लीं, पर उन्हें वहां से हटाकर अम्बाला जेल में तन्हाई में रख दिया।

इस बार रिहाई के बाद एक वर्ष उन्होंने अपने स्वास्थ्य-सुधार और अध्ययन-चिंतन में लगाया। 1941 में यद्यपि 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' करके वह फिर जेल गई थीं, पर अब उन्होंने निर्णय ले लिया था कि आगे कोई आंदोलन हुआ तो वह जेल नहीं जायेंगी, भूमिगत रहकर काम करेंगी। 8 अगस्त, 1942 के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के समय अपने पति के साथ वह बम्बई में हुई कांग्रेस-कार्यकारिणी की मीटिंग में उपस्थित थीं। 8 अगस्त की रात लगभग सभी बड़े नेताओं की गिरफ्तारी के बाद 9 अगस्त को सरकारी इमारतों पर तिरंगा फहराने के आंदोलन का श्रीगणेश करने वाली सभा की अध्यक्षता अरुणा आसफअली ने ही की थी।

इस अवसर पर लाठी-चार्ज करने, अश्रु-गैस छोड़ने, गोली चलाने की घटनाएं घटीं और धर-पकड़ शुरू हुई तो पूर्व सोचे अनुसार अरुणाजी तुरन्त भूमिगत हो गईं। उन्होंने कहा, **"सभी लोग जेल चले जाएंगे, तो आन्दोलन कौन चलायेगा?"** और वह गिरफ्तारी से बचते हुए आंदोलन का निरंतर सफल भूमिगत नेतृत्व करती रहीं। 26 सितम्बर, 1942 को **उनकी दिल्ली की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और सम्पत्ति लौटाने के लिए आत्म-समर्पण की शर्त लगा दी गई। इस पर भी अरुणाजी सामने नहीं आईं तो उनका मकान, सामान, उनकी कार, सब नीलाम कर दिए गए। अरुणाजी नहीं झुकीं। निरंतर गुप्त तरीकों से काम करते हुए आंदोलन को आगे बढ़ाती रहीं।** भूमिगत रहते हुए ही

उन्होंने डा. राम मनोहर लोहिया के साथ मिलकर 'इंकलाब पत्र' भी चलाया। इस पत्र के माध्यम से वह निरंतर जनचेतना जगाती रहीं, "इस समय हिंसा-अहिंसा की बहस में न पड़कर हमें लड़ाई जारी रखनी चाहिए। मैं चाहती हूं कि देश का हर नागरिक अपने ढंग से क्रांति का सिपाही बने।" इन अपीलों ने लोगों को इतना प्रभावित किया कि बहुत से सरकारी कर्मचारी नौकरियां छोड़, आंदोलन में कूद पड़े और हजारों छात्र-छात्राएं कालेजों से बाहर निकल, आंदोलन की गति तेज करने में जुट गए।

लुकते-छिपते, लगातार तकलीफें सहते, अरुणाजी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। उनका सुराग देने वाले के लिए 5000/- रुपये का इनाम भी घोषित था। **गांधीजी ने उन्हें सलाह दी, "अपने आप को इस तरह मारने के बजाय, साहस से आत्म-समर्पण कर दो और 5000/- रुपये का इनाम स्वयं जीतकर हरिजन फंड में दान कर दो।" पर गिरे स्वास्थ्य और गांधीजी की इज्जत करने के बावजूद, अरुणा आसफअली ने अन्त तक आत्म-समर्पण नहीं किया।** 1944 में सभी नेता रिहा हो गए थे। तब भी वह सामने नहीं आईं। 26 जनवरी, 1946 को जब उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट वापस ले लिया गया, तभी प्रगट हुईं। 'दैनिक ट्रिब्यून' ने अरुणा जी की इस साहसिक व सफल भूमिगत 'मोर्चाबन्दी' के लिए उन्हें 'सन् 42 की रानी झांसी' कहकर सम्बोधित किया। आजादी के बाद 1947 में वह दिल्ली प्रदेश कांग्रेस-कमेटी की अध्यक्ष बनीं और 1958 में दिल्ली नगर निगम की 'पहली महिला मेयर' चुनी गईं।

वामपंथी विचारधारा की समर्थक अरुणा आसफअली तब से लेकर आज तक अनेक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक, सामाजिक व महिला संस्थाओं में अग्रणी रूप से सक्रिय हैं। 'लिंक' और पैट्रियाट' पत्रों की संस्थापिका-व्यवस्थापिका के नाते पत्रकारिता में भी उन्होंने कम नाम नहीं कमाया है। उन्हें अनेक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार-सम्मान भी मिल चुके हैं। पर उनके लिये वास्तविक सम्मान तो जनता के दिलों में था; आज भी है।

'भूमिगत स्वयंसेवक-दल' की स्थापना करने वाली

सुचेता कृपालानी

"जबकि सारे नेता पहले ही जेल में हैं, हर किसी का जेल जाना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं। सभी लोग जेल चले जायेंगे, तो काम कौन करेगा? काम नहीं होगा तो आंदोलन नेतृत्वहीन होकर रास्ते से भटक जाएगा।" ऐसा कहने वाली अरुणा आसफअली ही नहीं, सुचेता कृपालानी भी थीं। उन्होंने भी आंदोलन में प्रत्यक्ष भाग लेने और पुलिस को आत्म-समर्पण करने के बजाय, भूमिगत रहकर कार्य करना पसंद किया। इस तरह कार्यरत रहने पर उन्हें अपार कष्टों का सामना करना पड़ा, पर 1944 तक उन्होंने पुलिस को खबर नहीं लगने दी। तभी तो सन् 42 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान जो महिला नाम उभर कर सामने आए, उनमें सुचेता कृपालानी का स्थान अरुणा आसफअली के बाद दूसरा है।

सुचेता का जन्म 1908 में अम्बाला में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा लाहौर में हुई। एम.ए. दिल्ली विश्वविद्यालय से किया। राष्ट्रीयता और खादी के पारिवारिक परिवेश में पल कर स्वाधीन भारत के सपने वह बचपन से ही देखा करती थीं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका के रूप में कार्य करते हुए भी उनकी भावनाएं देशसेवा के लिए जागृत रहीं। फिर 1932 से सार्वजनिक सेवा-क्षेत्र में और 1939 से सीधे

राजनीति में कूद पड़ीं। 1934 से 1939 तक समाज-क्षेत्र में रहकर भी वह गुप्त रूप से राजनीति में भाग ले रही थीं, क्योंकि प्रत्यक्ष भागीदारी और अध्यापन-नौकरी साथ-साथ नहीं चल सकते थे। फिर कांग्रेस में शामिल हो, स्वतंत्रता-संग्राम में प्रत्यक्ष भाग लेने के लिए उन्होंने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। 1939 में उनके कार्य से प्रभावित होकर ही गांधीजी ने 1940 में 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के लिए उनके नाम का चुनाव किया था। तभी आन्दोलन करती हुई वह गिरफ्तार हुईं।

इसके बाद 1942 के आन्दोलन के समय अग्रिम पंक्ति के युवा उत्साही कार्यकर्ताओं में उनका नाम जब लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा, तब से तो वह कभी जनता की आंखों से ओझल हुई ही नहीं। **1942-43 में लगातार भूमिगत होकर भी वह युवा कार्यकर्ताओं की प्रेरणा बनी रहीं। भूमिगत रहते हुए उन्हीं दिनों 1943 में उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस के 'महिला विभाग' की स्थापना भी की।** उसकी कार्यवाहक मंत्री के नाते इस महिला-संगठन के माध्यम से उन्होंने प्रदेश कमेटियों को अनेकों ऐसे परिपत्र भेजे, जिनमें महिला-सभाओं के द्वारा महिलाओं में सूचनाएं वितरित करने और उनमें आजादी की चेतना जगाने के लिए निर्देश रहते थे। अपने **इसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए उन्होंने एक 'अंडर ग्राउन्ड वालंटियर फोर्स' (भूमिगत स्वयंसेवक दल) की स्थापना भी की।** इन स्वयंसेवकों के लिए जगह-जगह प्रशिक्षण का इन्तजाम किया। विशेष रूप से लड़कियों को ड्रिल, लाठी-चलाना, प्राथमिक चिकित्सा और संकट में घिर जाने पर आत्मरक्षा के लिए

हथियार व अन्य साधन प्रयोग में लाना आदि बातें सिखाकर आन्दोलन के लिए तैयार किया। यह स्वयंसेवक दल उनके भूमिगत कार्य में विशेष सहायक सिद्ध हुआ। राजनैतिक कैदियों के परिवारों को राहत पहुंचाने का महत्वपूर्ण कार्य भी उनके जिम्मे था। 1942 से 1944 तक निरंतर सफल भूमिगत आन्दोलन चलाने के बाद सुचेता जी को 1944 में ही गिरफ्तार किया जा सका था।

1945 में रिहा होने के बाद उन्होंने अपना अधिकांश समय समाज-सेवा कार्यों को समर्पित कर दिया। विभाजनपूर्व 1946 में पूर्वी बंगाल के साम्प्रदायिक दंगों के और 1947 में पश्चिम पंजाब के दंगों कें समय राहत-कार्य हो, भारत विभाजन के बाद दोनों ओर से अपहृत महिलाओं को बचाने का कार्य हो अथवा शरणार्थी पुनर्वास कार्य हो, सुचेताजी इन सभी मोर्चों पर तैनात थीं। 1947-51 में वह राष्ट्रीय कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्या और 1958-60 तक कांग्रेस महामंत्री रहीं। 1952-57 और 1957-62 में लोकसभा के लिए निर्वाचित हुईं। अक्टूबर, 1963 से मार्च 1967 तक उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री भी रहीं। इस नाते स्वतंत्र भारत की 'पहली महिला मुख्यमंत्री' का गौरव उन्हें प्राप्त हुआ। वह सुप्रसिद्ध नेता आचार्य कृपालानी की पत्नी थीं। राजनैतिक मतभेदों के बावजूद, उनका दाम्पत्य जीवन सुखी था।

1 दिसम्बर, 1975 को उनका निधन हो गया। वह भूतपूर्व मुख्यमंत्री थीं। राजनैतिक नेत्री थीं। एक सफल सामाजिक कार्यकर्त्री थीं। पर इन सबसे अधिक स्वतंत्रता-सेनानी के रूप में ही देश उन्हें याद करता है।

'रेडियो षड्यंत्र-केस' में दण्डित

उषा मेहता

कांग्रेस समाजवादी पार्टी की एक सदस्या कु० उषा मेहता का नाम बंबई रेडियो षड्यंत्र-केस के साथ जुड़ कर प्रसिद्ध हुआ। उषा मेहता का जन्म 20 मार्च, 1920 को सतारा में हुआ था। विल्सन कालेज, सूरत से बी.ए. और 1941 में बम्बई यूनिवर्सिटी से एल.एल.बी. करके उसने एम.ए. में प्रवेश लिया ही था कि 1942 का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छिड़ गया और उषा कालेज की पढ़ाई छोड़, आन्दोलन में कूद पड़ी। शुरू में सभी महिलाओं की तरह बिदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों पर धरने दिए और प्रदर्शनों व जुलूसों में नारे लगाए। पर इस कार्य से उसे संतोष न हुआ। उसकी इच्छा कुछ नया क्रांतिकारी-कार्य करने की थी।

कुछ मित्रों की सहायता से उषा ने गुप्त प्रसारण सेवा शुरू करने के लिए एक गुप्त रेडियो की स्थापना की। पिता सरकारी कर्मचारी थे। उन्होंने विरोध किया, पर बहादुर लड़की ने अपने जज पिता के आदेश और उनकी नौकरी चले जाने की भी परवाह नहीं की। कहा, "ऐसे समय जब सारे नेता जेल में हैं। प्रेस पर सेंसर है। आजादी की आवाज दबा दी गयी है। उसे देशवासियों तक पहुंचाने के लिए ऐसे रेडियो की सख्त जरूरत है। सभी लोग आन्दोलन करके जेल चले जाएं तो यह काम

कौन करेगा ? मैं भूमिगत रह कर काम को आगे बढ़ाने में और देशवासियों का उत्साह बनाए रखने में विश्वास करती हूं।" एक रिश्तेदार देशभक्त महिला से उसे अपने कार्य के लिए पैसा व आभूषण भी मिल गये और बाबू भाई प्रसाद नामक एक साथी भी।

बाबू भाई प्रसाद से मिलकर उषा ने रेडियो स्थापित कर दिया। ऐसा एक गुप्त ट्रांसमीटर विट्ठल भाई झावेरी ने भी लगा रखा था और उधर डा० लोहिया के साथियों का एक गुट भी गुप्त रेडियो चला रहा था। इन तीनों में बाबू भाई और उषा का रेडियो अधिक सक्रिय था। इसके अपने ट्रांसमीटर, ट्रांसमिटिंग स्टेशन तथा रिकार्डिंग स्टेशन थे। अपने गुप्त संदेश थे और अपनी 'वेव लाइन' थी। **9 अगस्त, 1942 को आन्दोलन शुरू हुआ और 14 अगस्त, 1942 को उषा मेहता के गुप्त रेडियो का प्रसारण शुरू भी हो गया। 42.84 मीटर तक इनकी 'रेडियो कालिंग' थी। ऐसे समय, जबकि पूरी सरकारी मशीनरी उस रेडियो की खोज और इन लोगों की धर-पकड़ के लिए सतर्क थी, यह कोई आसान काम न था।** एक रिश्तेदार ने मदद करके इन्हें अपना फ्लैट भी दे दिया। संकट-स्थिति में स्थानान्तरण के लिए एक दूसरा फ्लैट भी लेकर रख लिया गया। बाद में प्राप्त कुछ विवरणों से पता चलता है कि इनमें से एक फ्लैट अभिनेत्री नरगिस की मां का था।

पर खतरों के कारण हर 15 दिन में जगह-बदलना अनिवार्य हो गया। जैसे ही किसी को संदेह होता, जगह बदल दी जाती। एक बार एक मकान मालिक द्वारा पकड़ाए जाने के

प्रयत्न से ये लोग बाल-बाल बचे। यह उषा का ही रेडियो था, जो लगातार 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के नारे लगाता था और जिसने क्रांतिकारियों के बम-केस, जमशेदपुर हड़ताल और चिमूर व आष्टी गांवों में महिलाओं के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार की खबरें सबसे पहले दी थीं। कांग्रेस-संगठन की गतिविधियों और उद्देश्यों के बारे में रेडियो लगातार सूचनाएं प्रसारित करता था। डा. लोहिया के भाषण प्रायः यहां से प्रसारित होते रहे, अरुणा आसफअली के संदेश और आवाहन भी।

सावधानी के लिए बार-बार जगह बदलते हुए और लगातार खतरों में यह रेडियो अधिक समय तक काम नहीं कर सका। सरकार की पैनी नजरें उस पर गड़ी थीं और रेडियो को खोज निकालने के लिए मशीनरी का उसके पास अभाव न था। 12 नवंबर की रात छापा मार कर स्टेशन को पकड़ लिया गया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। बाबू भाई प्रसाद और उषा मेहता दोनों 'रेडियो षड्यंत्र-केस' में गिरफ्तार कर लिए गए। लेकिन उषा मेहता से जो कुछ भी पूछा गया, उसने जवाब देने से इंकार किया। पूछताछ के समय उसे 'लाक-अप' में रखा गया। किसी कैदी के जेल-जीवन में यह सबसे कठिन समय होता है। किसी महिला के लिए तो अत्यन्त कठिन। छः महीने की लगातार पूछताछ में उषा को अनेक यातनाएं दी गयीं, इसके बावजूद वह निडरता से अड़ी रही। पुलिस उससे कुछ भी उगलवाने में सफल नहीं हो सकी। अन्त में षड्यंत्र की स्वीकृति पर ही केस बना कर उस पर मुकदमा चलाया गया। इस प्रसिद्ध केस को

शासन बनाम बाबू भाई प्रसाद, विट्ठल भाई झावेरी, उषा मेहता, चन्द्रकान्त झावेरी, नानक मोटवार केस कहा जाता है।

उषा मेहता के शब्दों में, "पूरे मुकदमे के दौरान हमें जो मनोरंजक अनुभव हुए, उसकी तुलना जीवन के किसी आनन्द से नहीं की जा सकती। जब प्रासीक्यूटर प्रश्न पूछता, हम चाकलेट चबाते रहते और निडरता से हंसते रहते।" केस के अन्त में उषा मेहता को 4 साल कैद की सजा दी गयी। अप्रैल 1946 में रिहा होने के बाद उसने अपना छूटा अध्ययन आगे बढ़ाया। 'महात्मा गांधी के सामाजिक व राजनैतिक कार्य' विषय पर थीसिस लिख कर डाक्टरेट की डिग्री ली और फिर बम्बई विश्वविद्यालय में राजनीति की लेक्चरर बनी।

सन् 42 के आंदोलन के अन्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी

आतंककारी कार्यवाहियों के लिए जिन्हें 15 वर्ष की सजा सुनाई गई

विद्या देवी देशसेवक

नैनीताल की विद्या देवी देशसेवक का नेतृत्व भी 1942 के उग्र आंदोलन में बहुत प्रभावी रहा था। **उन्हें रेल की पटरियां उखड़वाने और अन्य तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों के लिए लोगों को उकसाने के कारण 'भारतीय दण्ड संहिता' तथा 'भारत रक्षा कानून' की कई धाराओं के तहत 15 वर्ष की लंबी अवधि के लिए कड़ी कैद की सजा सुनाई गई थी।** पर स्थानीय जनता के दबाव और नेताओं के प्रयत्न से सरकार को उन्हें 1946 में रिहा कर देना पड़ा था।

महाराष्ट्र की भूमिगत नेत्रियां

लीला पाटिल, इंदुमती दत्तात्रेय और लीला ताई

महाराष्ट्र के सतारा संभाग में भी स्त्रियों का 'तूफानी दल' गरमजोशी के साथ सक्रिय था। **दल की नेत्री लीला पाटिल 1942 में गिरफ्तार हुईं, 1944 में पूना सैन्ट्रल जेल से भाग गईं और 1944 से 46 के नवंबर तक भूमिगत रहकर पूरे सतारा जिले में आंदोलन का संचालन करती रहीं।**

नासिक की श्रीमती **इंदुमती दत्तात्रेय उपासिनी को भी भूमिगत रहकर आपत्तिजनक कार्यवाहियों को चलाने के जुर्म में सात वर्ष के कठोर श्रम के साथ कारावास का दण्ड सुनाया गया था।** नासिक क्षेत्र में भूमिगत कार्यकर्त्री के रूप में उनका खूब आतंक फैला हुआ था।

जलगांव की नर्स **लीला ताई उत्तमराम पाटिल** महाराष्ट्र का लंबी सजा पाने वाला एक अन्य नाम था। **इन्हें भी भूमिगत रहकर तोड़-फोड़ की कार्यवाहियां चलाने के कारण साढ़े पांच वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था।**

'टीटागढ़ षड्यन्त्र केस' से जुड़ा एक और नाम, जो 1942 में पुलिस की गिरफ्त में आया था

वनलता सेन

वनलता सेन का जन्म सितम्बर 1915 में फरीदपुर के कार्तिकपुर गांव में हुआ। पिता कालीप्रसन्न सेन और मा सरोजिनी देवी दोनों ही देशभक्त और स्वदेशी-प्रेमी थे। 1921 के 'असहयोग आन्दोलन' में उनके परिवार के कई लोग स्कूल-कालेज व नौकरियां छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़े थे। वनलता सेन बचपन से यह सब देखती रही और मां से ये सारी कहानियां तन्मय होकर सुनती रही। 1925 में देशबन्धु चितरंजन दास की मृत्यु के समय देश भर में शोक मनाया गया था। उन्हीं दिनों वनलता सेन भी सभाओं में भाग लेने लगी थी।

1930 के 'नमक सत्याग्रह' के दिनों में ही क्रांतिकारी गतिविधियां भी तेज हो गई थीं। वनलता सेन एक ओर मां के साथ धरनों-जुलूसों वाले अहिंसक आंदोलन से जुड़ी थी, दूसरी ओर 'अनुशीलन-दल' की सदस्या बनकर विप्लवी-कार्यों में भी भाग लेने लगी थी। कार्तिकपुर में उसने 'अनुशीलन-दल' की शाखा खोली, महिला समिति बनाई, क्रांति-साहित्य के लिए क्लब और पुस्तकालय की स्थापना भी की।

'अखिल बंगाल छात्र-समिति' की मंत्री के नाते उसका नाम 'टीटागढ़ षड्यन्त्र केस' के साथ भी जुड़ा। पर वह

भूमिगत होकर गिरफ्तारी से बची रही। 1937 में छात्र-फैडरेशन के माध्यम से उसने 'बन्दी-मुक्ति आन्दोलन' चलाया। 1939 में सुभाष चन्द्र बोस के साथ विभाजित कांग्रेस में चली गई। **1942 के आन्दोलन में खुल कर भाग लेने पर लाठी-चार्ज में घायल हुई। गिरफ्तार होने पर उसे यातनाएं भी दी गईं; अपमानित भी किया गया। तीन साल की जेल के बाद 1945 में उसकी रिहाई हुई।**

एम.ए. की परीक्षा वनलता सेन ने जेल में रहते हुए ही पास कर ली थी। मुक्ति के बाद एक विप्लवी साथी सरोज कुमार चक्रवर्ती के साथ विवाह करने पर वनलता, वनलता चक्रवर्ती बनीं। फिर पति के साथ मार्क्सवादी पार्टी से जुड़ गईं और राजनीति व समाज-कार्यों में भाग लेने लगीं।

भेष बदलकर भूमिगत कार्य

किरण चक्रवर्ती

किरण चक्रवर्ती का जन्म ढाका के नारायण गंज में 1921 में हुआ। पिता का नाम हीरालाल चक्रवर्ती और माता का स्वर्णप्रभा देवी था। उसके मामा श्री रमेश आचार्य 'अनुशीलन-दल' के नेता थे और मां कांग्रेसकर्मी। 'नारायण गंज महिला समिति' की संयोजिका के रूप में उनकी मां ने स्वदेशी-प्रचार और विदेशी बहिष्कार-आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। मामा का घर राजनीति का अड्डा था, जहां सभी क्रांतिकारी आया-जाया करते थे, ऐसे परिवेश में पलकर किरण ने भी दल के प्रशिक्षण-क्लब में 'जिमनास्टिक' और शस्त्र-चालन का प्रशिक्षण लिया। वह क्रांति-साहित्य और अस्त्र-शस्त्र इधर-उधर पहुंचाने का काम करती थी।

1942 में जब उसके मामा गिरफ्तार कर लिए गए, तब उनकी अनुपस्थिति में उनके काम को आगे बढ़ाने वाली किरण चक्रवर्ती ही थी। वह भूमिगत रहकर काम करती थी और भेष बदल-बदल कर इधर-उधर आती-जाती थी। फिर भी 1942 के अंत में वह पुलिस की पकड़ में आ गई और उसे तीन साल के लिए दीनाजपुर और ढाका प्रेसीडेन्सी जेलों में रखा गया।

1945 में रिहा होकर नारायण गंज लौटी और फिर से अपने दल को संगठित करने में लग गई।

असहयोग आन्दोलन और क्रांतिकारी आन्दोलन दोनों से जुड़ीं

माया घोष

गणित के प्रसिद्ध अध्यापक, बीजगणित प्रणेता श्री के.के. बसु की नातिन माया घोष का जन्म अप्रैल 1915 में दिल्ली में हुआ था। पिता का नाम जतीन्द्र नाथ घोष और माता का नाम प्रियवंदा देवी था। बचपन में मां की मृत्यु हो जाने से माया घोष का पालन-पोषण नानी मेघमाला देवी ने ही किया। मेघमाला देवी के भाई विप्लवी गतिविधियों से घनिष्ठ रूप से जुड़े थे। उनके घर में गोपनीय ढंग से 'संदिग्ध' लोगों का आना-जाना लगा रहता था। इसलिए इस परिवार को पुलिस के बहुत अत्याचार सहने पड़े। इस परिवेश में पलने पर माया घोष होश संभालते ही 'युगान्तर दल' के प्रसिद्ध नेताओं के सम्पर्क में आ गई थीं।

क्रान्ति-साहित्य पढ़ने और क्रान्तिकारियों के व्यक्तित्व से प्रभावित होने के कारण माया घोष छात्र-जीवन से ही इन गतिविधियों से जुड़ गई थीं। 1930 में जब दोनों आन्दोलन जोरों पर थे, एक दिन प्रसिद्ध कांग्रेस-नेत्री मोहिनी देवी उनके घर आईं। उन्होंने माया घोष को देश के प्रति समर्पित होने की शपथ दिलाई। उनके जाने के बाद माया घोष अपनी सहेली दीप्ति घोष और स्नेहलता दत्त के साथ घर से छिप कर निकल

गईं और एक खास जगह पर जुलूस में शामिल हो गईं। पुलिस ने पकड़कर तीनों को लाल बाजार थाने में बन्द कर दिया, पर नाबालिग समझकर उसी दिन शाम को छोड़ दिया। इस सरल मुक्ति से माया घोष उदास हो गईं।

1936 में बी.ए. करने के बाद पिता ने माया की शादी करनी चाही, पर वह किसी भी तरह राजी नहीं हुईं। मोहिनी देवी के साथ किया वायदा निभाने के लिए वह अहिंसक आन्दोलनों में भाग लेती रहीं और क्रान्तिकारियों से जुड़ाव के कारण उनके कार्यों में भी मदद करती रहीं। 'मंदिरा' की संपादिका कमला दासगुप्ता से परिचय के बाद तो वह पूरी तरह दल के कार्य को समर्पित हो गईं।

1941 में घर वालों की असहमति के बावजूद, माया जी ने अध्यापन-कार्य शुरू कर दिया। अब वह अध्यापन के साथ, कांग्रेस-कार्य, जन-सेवा और स्वतन्त्रता-संग्राम, इन सभी क्षेत्रों में व्यस्त हो गईं। 1942 के आन्दोलन में जब प्रमुख नेता जेलों में थे, मायाजी ने कलकत्ता आकर महिलाओं को संगठित किया। स्कूल व अदालतें बन्द कराने के लिए धरने दिए गए। 31 अगस्त को सिविलकोर्ट में झंडा फहराने के समय पुलिस से भिड़ने में उन्होंने अनोखी दृढ़ता का परिचय दिया। **पुलिसवाहिनी को घेर कर, गोली चलाने जा रहे हाथों को मजबूती से पकड़ लिया और गोली नहीं चलने दी।** इस तरह बेरोक-टोक सावित्री देवी का भाषण होने दिया। फलस्वरूप भाषण के बाद सावित्री देवी के साथ माया घोष को भी गिरफ्तार करके राजशाही जेल भेज दिया गया। 2 साल बाद 1944 में उनकी रिहाई हुई। इसके बाद भी विवाह न करके वह समाजसेवा और राहत कार्यों में जुटी रहीं।

पूर्वेशिया के क्रांतिकारियों की मददगार

बेला मित्र

श्री सुरेश चन्द्र बोस की लड़की व **सुभाष चन्द्र बोस की भतीजी** बेला मित्र का जन्म नवम्बर 1920 में भागलपुर में हुआ और विवाह 1936 में जसोहर के श्री हरिदास मित्र के साथ हुआ। एक प्रसिद्ध स्वतंत्रता-सेनानी के परिवार से संबंधित होने के कारण बेला मित्र में देशभक्ति के संस्कार शुरू से ही थे। उस पर पति भी क्रांतिकारी विचारों वाले मिले तो जैसे सोने में सुहागा मिल गया।

1938 में बेला मित्र ने अपनी ससुराल जसोहर में महिला समिति का गठन किया। **नेताजी सुभाष बोस ने जब कांग्रेस का परित्याग करके विभाजित कांग्रेस का विरोधी सम्मेलन बुलाया, तो उस सम्मेलन के लिए 19 वर्षीय बेला मित्र ही नारीवाहिनी की कमाण्डर चुनी गई थीं।** नजरबंदी के दौरान नेताजी जब अपने घर से 15 जनवरी, 1941 की आधी रात रहस्यमय ढंग से गायब हुए, तब हरिदास मित्र ने अपने साथियों के साथ एक नए दल का गठन किया। बेला मित्र भी दल के काम में मदद के लिए साथ ली गईं। इस दल का संबंध पूर्वेशिया में नेताजी की 'आजाद हिंद फौज' से पहले ही श्री रासबिहारी बोस के साथ था। **बेला मित्र व उनके पति दोनों उड़ीसा में कोणार्क की ओर से शस्त्रों के गुप्त आयात का काम**

कर रहे थे। बेहाला के एक जंगल में एक मकान लेकर दल के साथी एक गुप्त रेडियो भी चला रहे थे। यह गुप्त रेडियो अक्टूबर 1944 तक चलता रहा। फिर जैसे ही पुलिस को भनक मिली, हरिदास मित्र पूर्वेशिया निकल गए। बाद में वह भी नेताजी की 'आजाद हिंद फौज' में शामिल हो गये थे। शेष लोग पकड़े गए या तितर-बितर हो गए।

जापान की हार के बाद 'आजाद हिंद फौज' के 21 साथियों सहित हरिदास मित्र को भी फांसी की सजा सुनाई गई, तो बेला मित्र फिर इन लोगों की मदद के लिए आगे आईं। बेला मित्र ने इस काम के लिए गांधीजी की शरण ली। बहुत पत्र-व्यवहार के बाद वह इन सभी 22 व्यक्तियों के लिए घोषित मृत्यु-दण्ड को आजीवन कैद में बदलवाने में सफल हो गईं। फिर आजादी के बाद तो उन्हें रिहा होना ही था।

बेला मित्र ने देश-विभाजन के समय साम्प्रदायिक दंगों से बरबाद हुए परिवारों तथा बर्मा से शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए भी बहुत कार्य किया। 31 जुलाई, 1952 को बेला मित्र की मृत्यु हो गई। नवम्बर 1958 में उनके जन्मदिन पर उनकी स्मृति को ताजा रखने के लिए अभय नगर नाम के एक स्टेशन का नाम बदलकर 'बेला नगर' रख दिया गया।